ज्ञान और ... कुछ अधिक अध्ययन और चिन्तनशील व्यक्तियों और विद्वानों तक ही सीमित रह गयीं।

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल की तुलना

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल के जीवन-क्षेत्रों में बड़ा परिवर्तन हुआ। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से यह अधिक स्पष्ट प्रतीत होगा :

(1) **युग**—पूर्व-वैदिक काल सदियों तक विस्तृत रहा। इस युग में ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं की रचना हुई। इसलिए इसे ऋग्वेद काल भी कहते हैं। उत्तर-वैदिक काल भी सदियों तक फैला रहा। इस युग में यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छः दर्शन, वेदांग, सूत्र-ग्रन्थ आदि की रचना हुई। इससे इसे उत्तर-वैदिक युग कहते हैं।

(2) **क्षेत्र**—ऋग्वैदिक युग में आर्य पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर गंगा की घाटी के उत्तरी भाग तक के क्षेत्र में रहते थे। उत्तर-वैदिक युग में आर्यों का विस्तार ... की ओर हुआ। हिमालय से विन्ध्या तक के प्रदेश में वे रहने लगे और दक्षिण भारत में उन्होंने प्रवेश कर वहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया।

... की वेश-भूषा और ... था। मांस, मदिरा और सोमरस का उपयोग खूब होता था। ... वेश-भूषा के वस्त्रों में विविधता आ गयी थी। ... विशेष अवसरों पर होता था। भोजन में कई प्रकार के ... विभिन्न ... और मदिरा का उपयोग कम हो गया था।

(य) पूर्व-वैदिक युग में आमोद-प्रमोद में जुआ, नृत्य, ... दौड़ तथा घुड़-दौड़ मुख्य थे। पर उत्तर-वैदिक काल में ... और दौड़ के साथ-साथ नाटक भी आमोद-प्रमोद के साधन ... वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग होने लगा था।

(5) **आर्थिक जीवन**—ऋग्वैदिक काल के आर्थिक ... और अन्य साधारण ग्रामीण उद्योग-व्यवसाय थे। परन्तु ... की वृद्धि के कारण कई प्रकार के नवीन उद्योग-धन्धों का ... क्षेत्र में विशिष्टीकरण बढ़ गया था और श्रम-विभाजन ... यिक संघ बनने लगे थे।

(6) **धार्मिक जीवन**—(अ) ऋग्वेद काल में ... पूजा प्रधान था। प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण हो ... धर्म आडम्बरयुक्त, जटिल, कर्मकाण्ड-प्रधान हो गया ...

Scanned with CamScanner

ज्ञान और वेदान्त की ... बात कुछ अधिक अध्ययन और चिन्तनशील व्यक्तियों और विद्वानों तक ही सीमित रह गयीं।

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल की तुलना

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल के जीवन-क्षेत्रों में बड़ा परिवर्तन हुआ। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से यह अधिक स्पष्ट प्रतीत होगा :

(1) **युग**—पूर्व-वैदिक काल सदियों तक विस्तृत रहा। इस युग में ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं की रचना हुई। इसलिए इसे ऋग्वेद काल भी कहते हैं। उत्तर-वैदिक काल भी सदियों तक फैला रहा। इस युग में यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छः दर्शन, वेदांग, सूत्र-ग्रन्थ आदि की रचना हुई। इससे इसे उत्तर-वैदिक युग कहते हैं।

(2) **क्षेत्र**—ऋग्वैदिक युग में आर्य पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर गंगा की घाटी के उत्तरी भाग तक के क्षेत्र में रहते थे। उत्तर-वैदिक युग में आर्यों का विस्तार पूर्व की ओर हुआ। हिमालय से विन्ध्या तक के प्रदेश में वे रहने लगे और दक्षिण भारत में उन्होंने प्रवेश कर वहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया।

... युग में लोगों की वेश-भूषा ...
माँस, मदिरा और सोमरस का उपयोग खूब होता ...
वेश-भूषा के वस्त्रों में विविधता आ गयी थी। ...
विशेष अवसरों पर होता था। भोजन में कई ...
और मदिरा का उपयोग कम हो गया था।

(य) पूर्व-वैदिक युग में आमोद-प्रमोद में ...
दौड़ तथा घुड़-दौड़ मुख्य थे। पर उत्तर-वैदिक ...
और दौड़ के साथ-साथ नाटक भी आमोद-प्रमोद ...
वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग होने लगा था।

(5) **आर्थिक जीवन**—ऋग्वैदिक काल ...
और अन्य साधारण ग्रामीण उद्योग-व्यवसाय थे ...
की वृद्धि के कारण कई प्रकार के नवीन उद्योग ...
क्षेत्र में विशिष्टीकरण बढ़ गया था और श्रम- ...
यिक संघ बनने लगे थे।

(6) **धार्मिक जीवन**—(अ) ऋग्वेद ...
पूजा प्रधान था। प्राकृतिक शक्तियों का दैवी ...
धर्म आडम्बरयुक्त, जटिल, कर्मकाण्ड-प्रधान ...

Scanned with CamScanner

(3) **राज्य**—(अ) ऋग्वैदिक काल में आर्यों के राज्य छोटे और सीमित होते थे, परन्तु उत्तर-वैदिक युग में नवीन, स्थायी, विशाल और विस्तृत राज्य स्थापित हो गये थे।

(ब) पूर्व-वैदिक युग में अधिकांश में राजतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी, कहीं-कहीं गणतन्त्रात्मक शासन भी था। किन्तु उत्तर-वैदिक युग में राजतन्त्र प्रणाली की शासन अवस्था थी और राजा का पद पैतृक और वंशानुगत हो गया था।

(स) पूर्व-वैदिक युग में राजा के अधिकार और कर्तव्य सीमित थे। राजपुरोहित, सेनानी और ग्रामणी राज्य के प्रमुख अधिकारी थे। उत्तर-वैदिक काल में राजाओं की शक्ति और उनके अधिकारों और कर्तव्यों में खूब वृद्धि हुई थी। राज्य कर्मचारियों और अधिकारियों की संख्या भी खूब बढ़ गयी थी। राजनीति में ब्राह्मणों का विशेष महत्व और प्रभुत्व बढ़ गया था।

(4) **सामाजिक जीवन**—(अ) पूर्व-वैदिक युग में आर्यों का सामाजिक जीवन ग्रामीण था। समाज में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। परन्तु वैदिक युग में आर्यों के प्रसार के साथ-साथ नगरों की वृद्धि हुई और नगर के जीवन का विकास हुआ। समाज में स्थायित्व के कारण संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा स्थायी और दृढ़ हो गयी।

(ब) समाज आर्य और अनार्य दो व्यापक भागों में विभाजित था और चार वर्णों की प्रथा प्रारम्भ हो गयी थी। पर लोगों को व्यवसाय-परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता थी। उत्तर-वैदिक युग में वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था समाज का आधार बन गयी थी। भिन्न-भिन्न वर्ण अधिक पृथक और स्पष्ट हो गये थे। कई अनार्य जातियाँ भी समाज में प्रविष्ट कर गयी थीं।

(स) पूर्व-वैदिक युग में स्त्रियों का समाज में आदर होता था और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार थे। उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं की दशा अवनत हो गयी थी और उनकी सामाजिक स्वतन्त्रता में कमी आ गयी थी।

(द) पूर्व-वैदिक युग में लोगों की वेश-भूषा और भोजन सादा व सरल था। माँस, मदिरा और सोमरस का उपयोग खूब होता था। परन्तु उत्तर-वैदिक काल से वेश-भूषा के वस्त्रों में विविधता आ गयी थी। विभिन्न रंगों के वस्त्रों का उपयोग विशेष अवसरों पर होता था। भोजन में कई प्रकार के व्यंजन बनने लगे थे। माँस और मदिरा का उपयोग कम हो गया था।

(य) पूर्व-वैदिक युग में आमोद-प्रमोद में जुआ, नृत्य, संगीत, आखेट और रथ-दौड़ तथा घुड़-दौड़ मुख्य थे। पर उत्तर-वैदिक काल में जुआ, नृत्य, संगीत, आखेट और दौड़ के साथ-साथ नाटक भी आमोद-प्रमोद के साधन थे। विभिन्न प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग होने लगा था।

(5) **आर्थिक जीवन**—ऋग्वैदिक काल के आर्थिक जीवन में कृषि, पशुपालन और अन्य साधारण ग्रामीण उद्योग-व्यवसाय थे। परन्तु उत्तर-वैदिक काल में नगरों की वृद्धि के कारण कई प्रकार के नवीन उद्योग-धन्धों का विकास हुआ था। उद्यम के क्षेत्र में विशिष्टीकरण बढ़ गया था और श्रम-विभाजन में वृद्धि हुई थी तथा व्यावसायिक संघ बनने लगे थे।

(6) **धार्मिक जीवन**—(अ) ऋग्वेद काल में धर्म सादा, सरल और प्रकृति-पूजा प्रधान था। प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण हो गया था। उत्तर-वैदिक काल में धर्म आडम्बरयुक्त, जटिल, कर्मकाण्ड-प्रधान हो गया था।

Scanned with CamScanner

ज्ञान और [illegible] अधिक अध्ययन और चिन्तनशील व्यक्तियों और [illegible] सीमित रह गयीं।

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल की तुलना

पूर्व-वैदिक काल और उत्तर-वैदिक काल के जीवन-क्षेत्रों में बड़ा परिवर्तन हुआ। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से यह अधिक स्पष्ट प्रतीत होगा :

(1) **युग**—पूर्व-वैदिक काल सदियों तक विस्तृत रहा। इस युग में ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं की रचना हुई। इसलिए इसे ऋग्वेद काल भी कहते हैं। उत्तर-वैदिक काल भी सदियों तक फैला रहा। इस युग में यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छः दर्शन, वेदांग, सूत्र-ग्रन्थ आदि की रचना हुई। इससे इसे उत्तर-वैदिक युग कहते हैं।

(2) **क्षेत्र**—ऋग्वैदिक युग में आर्य पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर गंगा की घाटी के उत्तरी भाग तक के क्षेत्र में रहते थे। उत्तर-वैदिक युग में आर्यों का विस्तार पूर्व की ओर हुआ। हिमालय से विन्ध्या तक के प्रदेश में वे रहने लगे और दक्षिण भारत में उन्होंने प्रवेश कर वहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया।

Scanned with CamScanner

(3) **राज्य**—(अ) ऋग्वैदिक काल में आर्यों के राज्य छोटे और सीमित होते थे, परन्तु उत्तर-वैदिक युग में नवीन, स्थायी; विशाल और विस्तृत राज्य स्थापित हो गये थे।

(ब) पूर्व-वैदिक युग में अधिकांश में राजतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी, कहीं-कहीं गणतन्त्रात्मक शासन भी था। किन्तु उत्तर-वैदिक युग में राजतन्त्र प्रणाली की शासन व्यवस्था थी और राजा का पद पैतृक और वंशानुगत हो गया था।

(स) पूर्व-वैदिक युग में राजा के अधिकार और कर्तव्य सीमित थे। राजपुरोहित, सेनानी और ग्रामणी राज्य के प्रमुख अधिकारी थे। उत्तर-वैदिक काल में राजाओं की शक्ति और उनके अधिकारों और कर्तव्यों में खूब वृद्धि हुई थी। राज्य कर्मचारियों और अधिकारियों की संख्या भी खूब बढ़ गयी थी। राजनीति में ब्राह्मणों का विशेष महत्व और प्रभुत्व बढ़ गया था।

(4) **सामाजिक जीवन**—(अ) पूर्व-वैदिक युग में आर्यों का सामाजिक जीवन ग्रामीण था। समाज में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। परन्तु वैदिक युग में आर्यों के प्रसार के साथ-साथ नगरों की वृद्धि हुई और नगर के जीवन का विकास हुआ। समाज में स्थायित्व के कारण संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा स्थायी और दृढ़ हो गयी।

(ब) समाज आर्य और अनार्य दो व्यापक भागों में विभाजित था और चार वर्णों की प्रथा प्रारम्भ हो गयी थी। पर लोगों को व्यवसाय-परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता थी। उत्तर-वैदिक युग में वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था समाज का आधार बन गयी थी। भिन्न-भिन्न वर्ण अधिक पृथक और स्पष्ट हो गये थे। कई अनार्य जातियाँ भी समाज में प्रविष्ट कर गयी थीं।

(स) पूर्व-वैदिक युग में स्त्रियों का समाज में आदर होता था और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार थे। उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं की दशा अवनत हो गयी थी और उनकी सामाजिक स्वतन्त्रता में कमी आ गयी थी।

(द) पूर्व-वैदिक युग में लोगों की वेश-भूषा और भोजन सादा व सरल था। मांस, मदिरा और सोमरस का उपयोग खूब होता था। परन्तु उत्तर-वैदिक काल से वेश-भूषा के वस्त्रों में विविधता आ गयी थी। विभिन्न रंगों के वस्त्रों का उपयोग विशेष अवसरों पर होता था। भोजन में कई प्रकार के व्यंजन बनने लगे थे। मांस और मदिरा का उपयोग कम हो गया था।

(य) पूर्व-वैदिक युग में आमोद-प्रमोद में जुआ, नृत्य, संगीत, आखेट और रथ-दौड़ तथा घुड़-दौड़ मुख्य थे। पर उत्तर-वैदिक काल में जुआ, नृत्य, संगीत, आखेट और दौड़ के साथ-साथ नाटक भी आमोद-प्रमोद के साधन थे। विभिन्न प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग होने लगा था।

(5) **आर्थिक जीवन**—ऋग्वैदिक काल के आर्थिक जीवन में कृषि, पशुपालन और अन्य साधारण ग्रामीण उद्योग-व्यवसाय थे। परन्तु उत्तर-वैदिक काल में नगरों की वृद्धि के कारण कई प्रकार के नवीन उद्योग-धन्धों का विकास हुआ था। उद्यम के क्षेत्र में विशिष्टीकरण बढ़ गया था और श्रम-विभाजन में वृद्धि हुई थी तथा व्यावसायिक संघ बनने लगे थे।

(6) **धार्मिक जीवन**—(अ) ऋग्वेद काल में धर्म सादा, सरल और प्रकृति-पूजा प्रधान था। प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण हो गया था। उत्तर-वैदिक काल में धर्म आडम्बरयुक्त, जटिल, कर्मकाण्ड-प्रधान हो गया था।

Scanned with CamScanner

(ब) पूर्व-वैदिक काल के प्रमुख देवी-देवता इन्द्र, वरुण, अग्नि, मरुत, द्यौ, उषा, पृथ्वी आदि थे। उत्तर-वैदिक युग में विष्णु और रुद्र या शिव प्रमुख देवता ऋग्वेद काल के देवी-देवताओं का महत्व कम हो गया था।

(स) पूर्व-वैदिक युग में यज्ञ, अनुष्ठान और हवन सादे थे और प्रत्येक गृहस्थ उन्हें कर सकता था। परन्तु उत्तर-वैदिक युग में यज्ञों की सख्या, जटिलता की अवधि बढ़ गयी थी। अब वे अधिक पेचीदा और व्ययसाध्य हो गये थे। उनमें की बलि भी दी जाने लगी थी।

(द) पूर्व-वैदिक युग में धार्मिक क्रिया-विधियाँ, आराधना, स्तुति और पूजा के ढंग सादे और सरल थे। परन्तु उत्तर-वैदिक काल में धार्मिक क्रिया-विधियाँ अधिक विस्तृत, पेचीदा, गूढ़ और आडम्बरयुक्त हो गयी थीं। तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने और अन्ध विश्वास धर्म के अंग बन गये थे।

(य) पूर्व-वैदिक काल में ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन और पुरोहित का कार्य करते थे। वे समाज के एक अंग थे। उत्तर-वैदिक युग में समाज और धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का प्रभुत्व और महत्व अधिक बढ़ गया था। साधारण मनुष्यों का जीवन ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित यज्ञों और धार्मिक कर्मकाण्डों की एक शृंखला बन गया था।

(र) ऋग्वैदिक युग में विशिष्ट दार्शनिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रचार नहीं हुआ था, परन्तु उत्तर-वैदिक युग में छः दर्शन तथा परब्रह्म, आत्मा, सृष्टि, कर्मवाद, पुनर्जन्म, ज्ञान, तप, मोक्ष आदि के नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये थे।

आर्यों की सभ्यता और सैंधव्य सभ्यता की तुलना

(इ) धार्मिक संगठन का अभाव

(इ) साधु-साध्वियों का अनुशासनबद्ध संगठन

(इ) अनुशासनबद्ध धार्मिक संघ और उसका बड़ा महत्व

बौद्ध कला

बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार में ललितकलाओं का उपयोग किया गया। भवन निर्माणकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि का उपयोग बौद्ध धर्म के प्रसारण के लिए किया गया। कला के माध्यम से साधारण जनता के लिए बौद्ध धर्म को आकर्षक, सरल और सुबोध बनाया गया। कला को धर्म से प्रेरणा मिली और वह धर्म की दासी हो गयी। ईसा पूर्व तीसरी सदी से लेकर, ईस्वी सन् की तीसरी और चौथी सदी तक बौद्ध धर्म में उपयुक्त कला का विस्मयकारी विकास हुआ। इस दीर्घकाल में बौद्ध कला में विभिन्न अंग विकसित हुए। बौद्ध धर्म की अन्तर्हित आध्यात्मिकता कला के द्वारा अभिव्यक्त हुई।

बौद्ध स्तूप

बुद्ध और महान् अर्हतों की अस्थियों पर बनायी गयी समाधियां स्तूप कहलाती हैं। कभी-कभी स्तूप बौद्ध धर्म के स्मारक स्थानों पर भी बनाये जाते थे। बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी अस्थियों पर राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, पावा, कुशीनगर, रामग्राम और वैठद्वीप में आठ स्तूप बनाये थे। सम्राट् अशोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण किया था। इन स्तूपों में से एक को काफिरिस्तान (जलालाबाद, अफगानिस्तान) में, एक को कुसीनारा में, एक को शाहबाद जिले में "मसाढ़" ग्राम से पूर्व की ओर लगभग 9 किलोमीटर दूरी पर, एक को वंशाली में और एक को पाटलिपुत्र में सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने देखा था। अशोक के बाद भी अनेक स्तूप बनाये गये। इन स्तूपों के आधार वृत्तात्मक या वर्णाकार हैं और इनके चारों ओर कहीं पाषाण वेष्टिनियाँ हैं और कहीं नहीं भी हैं। सबसे प्राचीन स्तूप जो

आज भी विद्यमान है वह नेपाल की सीमा पर पिपरावा में है। यह 38 सेमी × 25 सेमी × 8 सेमी मोटी ईंटों का बना हुआ है। इसकी परधि 35 मीटर और ऊँचाई 6·5 मीटर है। सम्भवतः इसका निर्माण काल ईस्वी पूर्व 450 में हुआ था। अन्य स्तूपों में वाराणसी, साँची, भरहूत और अमरावती के स्तूप अधिक प्रसिद्ध हैं। वाराणसी में सारनाथ के समीप धर्मराजिक स्तूप है जिसे सम्भवतः अशोक ने निर्मित किया था। छठी से बारहवीं सदी तक इस स्तूप को एक के बाद एक क्रमशः छः बार आच्छादित किया गया था। यह स्तूप पाषाण के ऊँचे चबूतरे पर बना है और इसका ऊपर का भाग ईंटों का बना है। साँची का स्तूप बौद्ध कला में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ईसा पूर्व तीसरी सदी में अशोक ने इसे निर्मित किया था। एक सदी पश्चात इसमें परिवर्द्धन हुए। इसके चारों ओर विशाल कलापूर्ण चार महाद्वार हैं। स्तूप के चारों ओर पाषाण-वेष्टिनी (Railing) है। स्तूप के चतुर्दिक प्रदक्षिणा पथ है। स्तूप के सबसे ऊपरी भाग पर दण्डमय छत्र है। स्तूप के प्रवेशद्वारों और वेदिकाओं पर बुद्ध और उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक गाथाएँ उत्कीर्ण हैं। पशु-पक्षी, देव, यक्ष, गन्धर्व, मानव आदि भी पाषाण में उत्कीर्ण हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी में शुंग शासनकाल में भरहूत में एक विशाल स्तूप निर्मित हुआ। इसके आधार-स्तर पर दीप स्थान बने हैं। इस स्तूप के तोरण द्वार और वेष्टिनी पर जातक कथाएँ प्रभावोत्पादक ढंग से उत्कीर्ण की गयी हैं। शुंग-युग में ही बोधगया में भी स्तूप और उसकी परिवेष्टिनी निर्मित की गयी थी। शुंग-युग के स्तूपों में अंकित मूर्तियाँ व विविध दृश्य कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने हैं। ईसा पूर्व पहली सदी में बिहार के नन्दनगढ़ में भी एक स्तूप निर्मित हुआ था। दक्षिण भारत में गंतूर जिले में कृष्णा नदी के तट पर अमरावती और नागार्जुनकोंडा में तथा कृष्णा जिले में जगय्यपेट, घंटशाला, गुडिवाडा, भट्टि प्रोलू आदि स्थानों में ईसा पूर्व पहली सदी से तीसरी सदी तक ईंटों के अनेक स्तूप बनाये गये। इन स्तूपों में नीचे के आधार-स्तर पर अलंकरण हैं। इन स्तूपों में अमरावती और नागार्जुनकोंडा के स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। अमरावती का स्तूप कला-प्रिय आन्ध्र और सातवाहन राजाओं की कीर्ति का मूर्तिमान प्रतीक है। अमरावती का स्तूप संगमरमर की शिला-पट्टिकाओं से ढँका हुआ है और उसके चतुर्दिक वेष्टिनी (Railing) भी है। संगमरमर की शिला-पट्टिकाओं पर बुद्ध के जीवन और उनकी उपासना के अनेक दृश्य, मानव आकृतियाँ, पशु, अलंकरण, तोरण, स्तूप आदि अंकित किये गये हैं। अमरावती के स्तूप का यह अलंकरण सर्वोपरि है। अमरावती से लगभग 48 किमी दूर जगय्यपेट में भी एक प्राचीन स्तूप है। इसकी वेदिका के स्तम्भों पर यक्ष और यक्षणियों की खड़ी प्रतिमाएँ अंकित की गयी हैं। दूसरी सदी में नागार्जुनकोंडा में स्तूप निर्मित हुआ। इस स्तूप की कृतियों में अमरावती जैसी सजीवता नहीं है और भाव-व्यंजना में भी अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

बौद्ध धर्मावलम्बी कनिष्क ने भी अनेक स्तूप बनवाये। कनिष्क का अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) में बनाया हुआ स्तूप अपनी भव्यता, ऊँचाई और कला के लिए प्रसिद्ध था। यह स्तूप चार सौ फीट या 122 मीटर ऊँचा था और इसकी परिधि 1250 गज या 1143 मीटर थी तथा इसकी वेदिका 150 फीट या 46 मीटर ऊँची थी। सबसे ऊपर स्वर्ण-ताम्र के लगे 25 चक्र थे। उनके पास मूर्तियों से अलंकृत एक-एक मीटर ऊँचा और दूसरा डेढ़ मीटर ऊँचा स्तूप था। वहीं दो मूर्तियाँ भी थीं जिनमें से एक में बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे पालथी लगाकर बैठे हुए दिखाये गये थे।

[illegible] सदी तक पश्चिमोत्तर भारत

और अफगानिस्तान में अनेक स्तूप बनाये गये। इन स्तूपों की विशेषता यह थी कि वे गांधार शैली के बने थे। गांधार शैली के स्तूपों की विशेषता थी कि वे कृत्रिम ऊँचे चबूतरों पर बनाये जाते थे और उनकी ऊँचाई बहुत अधिक होती थी। उन्हें अधिक ऊँचा करने के लिए उन पर कृत्रिम छत्र लगा दिये जाते थे। इनका प्रदक्षिणापथ कार चबूतरे पर होता था। ये स्तूप पाषाण के होते थे और उन पर बौद्ध मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में अंकित होती थीं। इन स्तूपों के समीप महाविहार होते थे। ऐसे विहार स्तूपों के भग्नावशेष रावलपिण्डी (पाकिस्तान) जिले में, तक्षशिला और मणिक्याला में, मर्दान के समीप तख्तेबाही में, सहरी, बहलोल और जमालगढ़ी में तथा पेशावर जिले में चारसद्दा में उपलब्ध हुए हैं।

सिन्ध प्रदेश (पाकिस्तान) में पाँचवीं और छठी सदी में गांधार शैली के कई स्तूप बनाये गये थे। इनमें विविध प्रकार की ईंटों का उपयोग हुआ है। मीरपुर खास में ऐसा स्तूप प्राप्त हुआ है जिसके आधार-स्तर पर तीन कोठरियाँ हैं जिनमें बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं।

गुप्त काल में भी सम्भवतः स्तूप बनते रहे। सारनाथ और श्रावस्ती में ऐसे स्तूप बने। ये ऊँचे चबूतरों पर बनाये जाते थे। मध्यभारत क्षेत्र और पश्चिमी भारत में पर्वतों को काटकर गुफाएँ निर्मित की गयीं और उनमें चट्टानों में से स्तूप काटे गये। धर्मराजेश्वर, बाघ और कार्ले में ऐसे स्तूप हैं।

बौद्ध गुफाएँ और चैत्य

ईस्वी सन् की दूसरी सदी से पर्वतों को काटकर गुफाएँ बनायी गयीं। इनमें धर्मावलम्बी पूजा भी करते थे और बौद्ध भिक्षु रहते भी थे। जिस गुफा में पूजा और आराधना होती थी, उसे चैत्य कहते थे। चैत्य में विस्तृत सदन या हाल होता था जिसमें बौद्ध उपासक और भिक्षु एकत्रित होते थे। सदन में दूसरे छोर पर स्तूप होता था। कभी-कभी इस स्तूप पर बौद्ध की प्रतिमा उत्कीर्ण होती थी। स्तूप की परिक्रमा के लिए पथ होता था। सदन की लम्बाई में दोनों ओर सुन्दर कलापूर्ण पाषाण स्तम्भों की पंक्तियाँ होती थीं। चैत्य का प्रवेशद्वार विशाल और कलाकृतियों द्वारा अलंकृत होता था। चैत्य में प्रकाश और वायु द्वार पर बने गवाक्षों में से आते थे। ऐसी बौद्ध गुफाएँ और चैत्य मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में अनेक हैं। इनका निर्माण ईस्वी सन् की दूसरी सदी से दसवीं सदी तक होता रहा।

पूना के समीप भाजा की गुफा और इसका चैत्य सदन सबसे अधिक प्राचीन माना गया है। इसका निर्माण लगभग 200 ईस्वी पूर्व में हुआ। ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दी में महाराष्ट्र राज्य में कार्ले की गुफा और चैत्य निर्मित किये गये। इसका चैत्य सदन विस्तृत है और प्रवेश द्वार दो मंजिला बना है। प्रवेश द्वार पर दान देने वाली दम्पत्ति और बुद्ध की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। चैत्य सदन में अष्टकोण आकृति के कलात्मक स्तम्भ हैं। कान्हेरी में भी कार्ले के समान चैत्य गुफा बनायी गयी। इसके अतिरिक्त वेडसा, जुन्नार और अजन्ता में भी बौद्ध गुफाएँ और चैत्य चट्टानों को काटकर बनाये गये। अजन्ता की बौद्ध गुफाओं का निर्माण सातवीं सदी तक होता रहा। यहाँ की कुछ गुफाओं में केवल चैत्य सदन हैं। स्तूप या बुद्ध प्रतिमा नहीं हैं। ये हीनयान मत की गुफाएँ हैं। महायान मत की गुफाओं में बुद्ध की प्रतिमाएँ और स्तूप चट्टानों में से काटकर बनाये गये हैं। बुद्ध की प्रमुख मूर्ति स्तूप में ही बनी हुई है। स्तूप ऊँचा और उसका कलश गुफा की छत से जुड़ा हुआ है। गुफाओं में बुद्ध

Scanned with CamScanner

की प्रतिमाएँ और बुद्ध से सम्बन्धित कथानक पाषाण में उत्कीर्ण हैं। गुफाओं के स्तम्भ, प्रवेश द्वारा, छत, बरामदे आदि में नक्काशी और अलंकरण की प्रचुरता है। अजन्ता के समीप इलोरा में भी बुद्ध गुफाओं, चैत्यों व आवासगृहों का निर्माण सातवीं से दसवीं सदी तक की अवधि में हुआ। यहाँ की विश्वकर्मा गुफा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसकी वास्तुकला की अभिनव शैली है। इस गुफा के स्तूप में गौतम की एक बहुत मूर्ति है। इलोरा की कुछ गुफाएँ तीन मंजिल की हैं। इनमें चैत्य और विहार दोनों ही सम्मिलित हैं। गुफाओं की विशेषता है विशाल बुद्ध प्रतिमाओं की प्रचुरता। मध्यप्रदेश में धार जिले में बाघ में भी पर्वत को काटकर अजन्ता के समान ही चैत्य और विहार गुफाएँ निर्मित की गयीं। इसमें एक गुफा में बुद्ध और बोधिसत्वों की विशाल प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मध्य प्रदेश में मंदसौर जिले में भी धर्मराजेश्वर में गुफा चट्टानों को काटकर स्तूप, चैत्य, विहार और बौद्ध प्रतिमाएँ निर्मित की गयीं।

बौद्ध मूर्तियाँ

बौद्ध धर्म में पूजा और आराधना के आलम्बन के लिए पाषाण और काँसे की प्रतिमाएँ बनायी गयीं। स्वयं बौद्ध ग्रन्थों की बुद्धकालिक वार्ताओं में भी मूर्ति-निर्माण की रचना हुई। मगध के सम्राट अजातशत्रु ने राजगृह के चैत्य-निर्माण में बुद्ध के माता-पिता और स्थाविरों की मूर्तियाँ बनाकर प्रतिष्ठित की थीं। मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल में मूर्ति निर्माणकला पूर्णरूप से विकसित हुई थी। ईसा पूर्व तीसरी सदी में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ निर्मित सारनाथ का सिंह स्तम्भ शीर्ष तथा रामपुरवा का पाषाण वृषभ अपने ओज और अभिव्यक्ति के कारण मौर्ययुगीन मूर्तिकला की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं। सारनाथ में अशोक के ऊँचे पाषाण स्तम्भ के शिरोभाग पर बनी सिंह की मूर्तियाँ और उनके नीचे उत्कीर्ण की हुई संचरणशील सिंह, हाथी, वृषभ और अश्व की मूर्तियाँ और प्रत्येक के साथ एक-एक धर्मचक्र की आकृति सर्वश्रेष्ठ शिल्पकला-कृतियाँ हैं। ये अपनी ओजस्विता और स्वाभाविकता के लिए प्रसिद्ध हैं।

बौद्ध मूर्ति निर्माणकला का वास्तविक प्रारम्भ शुंग-काल से ईसा पूर्व द्वितीय सदी से होता है। बौद्ध धर्म के प्रभाव स्वरूप इस युग में साँची, भरहूत, बोधगया, अमरावती, नागार्जुनकोंड़ा में समृद्ध मूर्तिकला का उदय हुआ। इन स्थानों में स्तूपों की वेष्टनियों, वेदिकाओं और प्रवेश-द्वारों पर बुद्ध कथाओं के आधार पर अनेक विविध प्रकार की मूर्तियाँ निर्मित हुईं। साँची, भरहूत और बोधगया में बुद्ध के जीवन की घटनाओं और जातक कथाओं को पाषाण पर उत्कीर्ण किया गया। अलंकरण के लिए पशु-पक्षी, देवी-देवता, यक्ष, नाग, वृक्ष, लता आदि पाषाण में उत्कीर्ण किये गये। अब तक बुद्ध की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा नहीं की जाती थी; अपितु बुद्ध के प्रतीकों की पूजा और अर्चना होती थी जैसे वज्रासन, बोधिवृक्ष, उष्णीष, धर्म-चक्र, स्तूप, पदचिह्न आदि। बुद्ध की उपस्थिति की व्यंजना इन प्रतीकों द्वारा होती थी। महायान मत के विकास और प्रचार के साथ-साथ बुद्ध की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा-उपासना होने लगी।

दूसरी सदी ईसा पूर्व में पूना के समीप भाजा के बुद्ध विहार गुफा के प्रवेश द्वार पर दोनों ओर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी थीं। इनमें चार अश्वों के रथ पर सूर्य और हाथी पर इन्द्र यात्रा करते हुए दिखाये गये हैं। इन मूर्तियों की कला से औदार्य और विशालता का आभास होता है।

आन्ध्र-सातवाहन युग में बौद्ध मूर्तिकला विकसित होती रही। इस युग में पहली सदी ईसा पूर्व से दक्षिण भारत में अमरावती, जगय्यपेट और नागार्जुनकोंडा

के स्तूप निर्मित हुए। इन स्तूपों के पाषाण के फलकों पर अधिक सौष्ठवपूर्ण और भावाभिव्यक्तिमयी भव्य मूर्तियों का तक्षण किया गया। अमरावती में पौधों और विशेषकर कमल के पुष्पों का तक्षण मनोरम और आकर्षक है। कहीं-कहीं इनके मध्य में बुद्ध प्रतिमा भी उत्कीर्ण है और अन्यत्र स्थानों पर बुद्ध के पद-चिह्न भी अंकित हैं। नागार्जुनकोंडा के स्तूप में बुद्ध और उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को जैसे उनका प्रासाद परित्याग, उनकी तपस्या और मार-विजय आदि को कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण किया गया। बुद्ध की कुछ मूर्तियाँ पूर्ण आकार में खड़ी और कुछ पद्मासन लगाये उत्कीर्ण की गयीं। इनकी शैली मथुरा की शैली के अनुरूप थी। जगय्यपेट की मूर्तियों की तनिमा और भावव्यञ्जना दर्शनीय हैं। नारियों का सौन्दर्य भी प्रतिमाओं में अतीव मनोरम हो गया है। मूर्तियों के आंगिक विन्यास से कोमलता झलकती है। कनिष्क और कुषाण शासन-काल में महायान सम्प्रदाय का अधिक प्रचार होने से बुद्ध देवता के रूप में पूजित होने लगे। पूजा के लिए बुद्ध की प्रतिमाएँ बनायी जाने लगीं। बिहार प्रदेश में बुद्ध की जो पहली पूर्ति बनी वह बोधगया में मिली और उसका निर्माण-काल विक्रम सम्वत् 64 माना गया है।

मथुरा मूर्तिकला शैली—ईस्वी सन् की प्रथम सदी में उत्तर भारत में मथुरा और दक्षिण भारत में अमरावती बौद्ध मूर्तिकला के जीवित केन्द्र हो गये। इससे मथुरा शैली और अमरावती शैली का विकास हुआ। मथुरा मूर्तिकला शैली (Mathura School of Sculpture) कुषाण-काल से प्रारम्भ होती है और गुप्तकाल में अपने विकास और श्रेष्ठता की चरम सीमा पर पहुँच जाती है। मथुरा की बुद्ध प्रतिमाएं भारतीय कला का विशुद्ध रूप हैं। मथुरा कला केन्द्र की निर्मित मूर्तियाँ कौशाम्बी, सारनाथ और श्रावस्ती में उपलब्ध हुई हैं। कतिपय विद्वानों का मत है कि भगवान तथागत (बुद्ध) को पाषाण के माध्यम से सर्वप्रथम साकार करने का श्रेय मथुरा की शिल्पी-शैली को है।

मथुरा कला-शैली की प्रतिमाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो अधोलिखित हैं। इसमें बुद्ध बलिष्ठ और भरे हुए शरीर वाले अंकित किये गये हैं और वे प्रायः खड़े दिखाये गये हैं। उनके मस्तक पर केश नहीं रहते और यदि किसी प्रतिमा के केश दिखाये भी गये हैं तो वे छोटे-छोटे और मुड़े हुए हैं। उनके मुख और शरीर से भव्य शान्ति झलकती है और उनके परिधानों में बाह्य आडम्बरों का अभाव है। बुद्ध का एक हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ रहता है और दूसरा जंघा पर रखा रहता है और यदि बुद्ध खड़े दिखाये गये हैं तो वह हाथ कमर पर स्थित रहता है। गान्धार प्रतिमाओं की भाँति इन बुद्ध प्रतिमाओं में माथे पर ऊर्णा नहीं दिखाया जाता। परन्तु सिर से पीछे गोल प्रभामण्डल दिखाया जाता है। यह अलंकरणों से युक्त नहीं, पर सादा रहता है। कुछ बुद्ध मूर्तियों में उष्णीय, ऊर्ष्ण, कर्णपाश, जालांगुलि हस्त, चक्र आदि का विशेष तक्षण है। जब बुद्ध को खड़ा हुआ अंकित किया गया है तब उनके पैरों के बीच में सिंह की आकृति रहती है। वह शाक्य सिंह का प्रतीक था। जब मूर्ति में बुद्ध को बैठे हुए दिखाया गया है तो उनके पद्मासन को सिंह लिये हुए हैं। उनका आसन सिंहों पर आधारित किया गया है। बुद्ध प्रतिमा की पीठ कमल की अंकित नहीं की गयी, परन्तु पीछे बोधिवृक्ष दिखाया गया है, जिनके दोनों ओर देव-गण पुष्प-वर्षा करते अंकित किये गये हैं। बुद्ध की इन मूर्तियों में उनका धर्मविजयी स्वरूप अभीष्ट है। गान्धार मूर्ति कला-शैली में बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं में उनकी वेशभूषा और अलंकारों से भेद किया जा सकता है। गान्धार कला में बुद्ध की

प्रतिमा में शरीर पर कोई आभूषण नहीं रहता है और उनके परिधान या वस्त्र भी तपस्वियों के से रहते हैं। परन्तु बोधिसत्व की प्रतिमा में सिर पर मुकुट रखा गया है और उनके आभूषण व परिधान राजाओं जैसे अंकित किये गये हैं। मथुरा की मूर्ति-कला में बुद्ध और बोधिसत्व दोनों को साधक के रूप में देखा गया। प्रतिमा के नीचे अंकित लेख से ही विदित होता है कि वह प्रतिमा बुद्ध की है या बोधिसत्व की।

मथुरा शैली की खड़े हुए बोधिसत्व की एक विशाल प्रतिमा सारनाथ के संग्रहालय में है। यह कनिष्क के शासन-काल के तृतीय वर्ष में भिक्षुबल ने संघ को अर्पित की थी। मथुरा शैली में बुद्ध की एक बैठी हुई प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में और अमेरिका में बोस्टन नगर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इसी प्रकार श्रावस्ती में मथुरा शैली की बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह जेतवन बौद्ध विहार की थी और शिवमित्र नामक शिल्पी ने इसे बनाया था।

बौद्ध धर्म में वर्णित यक्षणियों और अप्सराओं की मूर्तियाँ भी मथुरा में निर्मित की गयीं। यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियों में भावमयी मुद्राएँ हैं। उनके तनिक झुके हुए शरीर में लालित्य प्रदर्शित किया गया है और उनका अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सौष्ठवमय अंकित किया गया है। मूर्तियों में कहीं यक्षणियाँ केशों की लटें सँवारती हुई और विविध हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई दिखायी गयी हैं, तो कहीं क्रीड़ा करती हुई। प्रसन्नता उनके मुख से फूटती है और नेत्रों से झलकती है। शृंगार और विलास उनके शरीर से झाँकता है। मूर्ति में यक्ष कुबेर को कहीं मधु का कलश लिये दिखाया गया है तो कहीं अपनी थैली से रत्न बिखेरते हुए। यक्ष-यक्षणियों की इन प्रतिमाओं में उनके शारीरिक सौन्दर्य और लावण्य तथा भाव-भंगिमाओं का श्रेष्ठ निर्देशन हुआ है, कामुकता और विलासिता की शृंगारमयी अभिव्यक्ति हुई है।

गुप्त-काल में मथुरा कला-शैली खूब विकसित हुई। गुप्त-काल की मूर्तिकला की विशेषताओं को उसने आत्मसात् कर लिया। बुद्ध की मूर्तियों में उनका दिव्य रूप प्रदर्शित किया गया। यशदिन्न द्वारा स्थापित गुप्त-काल की खड़ी हुई अभय मुद्रा में बुद्ध मूर्ति, हरिबल द्वारा भेंट की गयी कुशीनगर की बुद्ध प्रतिमा, पाँचवीं सदी में निर्मित इलाहाबाद के समीप मंकुवार स्थान में प्राप्त पद्मासन में बैठे हुए अभय-मुद्रा अंकित बुद्ध मूर्ति और गुप्त-युग में चौथी सदी की बोधगया की बोधिसत्व की मूर्ति मथुरा कला-शैली की श्रेष्ठ प्रतिमाएँ हैं।

अमरावती की मूर्तिकला की शैली—दक्षिण भारत में मद्रास के समीप गन्टूर जिले में और अमरावती में बने स्तूप पर अनेक अर्द्धचित्र और प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गयी हैं। ये अर्द्धचित्र इतनी सूक्ष्मता से अंकित किये गये हैं, उनमें शरीर के अंग-प्रत्यंगों के परिमाण पर इतना अधिक ध्यान दिया गया है कि ये अर्द्धचित्र सजीव हो उठे हैं, उनमें लालित्य और प्राणमयता है। अमरावती में पुरुषों की जो प्रतिमाएँ हैं, उनमें विविध भंगिमाओं से सौष्ठव आ गया है। स्त्रियाँ तन्वंगी हैं और त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हुई उत्कीर्ण की गयी हैं। उनके शरीर का ऊपरी भाग अनावृत है। बुद्ध जीवन के अनेक प्रसंग भी पाषाण पर अंकित किये गये हैं, जैसे सिद्धार्थ का जन्म-उत्सव, बुद्ध की मार-विजय, देवदत्त द्वारा बुद्ध को मारने के हेतु पागल हाथी का भेजना, उसकी उन्मत्तता, नागरिकों की घबराहट और भाग-दौड़ तथा हाथी का विनीत भाव से बुद्ध के समीप घुटने टेकने का दृश्य, राजकुमार सिद्धार्थ के जीवन की उस घटना का अंकन जब वे उस घोड़े पर सवार होते हुए दिखाये गये हैं; जो किसी को भी पास नहीं फट-

करने देता था। इस दृश्य में नगर के लोग उद्विग्न होकर भागते हुए दिखाये गये हैं; उनकी घबराहट उनकी मुखाकृतियों से झलकती है।

अमरावती वह प्रदेश था जहाँ आर्यों और अनार्यों या द्रविड़ों की संस्कृतियों का समन्वय हो रहा था। अतएव आर्य और अनार्य तत्व एक विशाल इकाई में घुल-मिल रहे थे और इनको अमरावती के स्तूप और उसकी पाषाण-शिलाओं पर अंकित किया गया। अमरावती के प्राचीन स्तूप पर द्रविड़ उपासना के नाग उत्कीर्ण हैं। नाग अपने मूल सर्प में अंकित हैं। वे पाँच फन के हैं और कुण्डली मारकर बैठे उत्कीर्ण किये गये हैं। कालान्तर में अमरावती के स्तूपों पर ज्यों-ज्यों अलंकरण में वृद्धि होती गयी, नाग देवता का अंकन कम होता गया और उनके स्थान पर बुद्ध की प्रतिमा अंकित की गयी। धीरे-धीरे सर्प बुद्ध का आसन बन गया और वे उसकी कुण्डली पर बैठ जाते हैं और वह अपना फन छत्र की भाँति तान देता है। कहीं नाग-राजा व अन्य लोग बुद्ध की उपासना करते अंकित किये गये हैं, कहीं बुद्ध बिना नाग के ही अंकित हैं तो कहीं वे उपदेश देते हुए उत्कीर्ण हैं। इन प्रतिमाओं पर चिन्तन की एक हल्की-सी छाया दृष्टिगोचर होती है। इसलिए अमरावती को साँची, भरहुत और बोधगया के प्रारम्भिक बौद्ध-शिल्प और विकसित गुप्त-कला की बीच की कड़ी माना गया है।

अमरावती में बुद्ध की दो आदमकद प्रतिमाएँ हैं जो दीवार के सहारे खड़ी हैं। इनमें बुद्ध घुटनों से नीचे तक का लम्बा वस्त्र पहने हुए हैं और उनमें सलवटें पड़ रही हैं। इस वस्त्र से बुद्ध का बायाँ कन्धा और शेष शरीर ढँक जाता है, केवल दाहिना कन्धा अनावृत्त रहता है। इन प्रतिमाओं पर विरक्ति और चिन्तन की भावना परिलक्षित होती है। अमरावती में बुद्ध के अतिरिक्त स्त्री-पुरुषों की जो आकृतियाँ अंकित की गयी हैं, वे अत्यन्त सुन्दर और सुडौल हैं। उनके शरीर में लावण्य झलकता है। उनमें मथुरा की प्रारम्भिक यक्ष-मूर्तियों जैसा भारीपन नहीं है।

सारनाथ की मूर्तिकला शैली—उत्तरी भारत में मथुरा के साथ-साथ वाराणसी के पास सारनाथ भी बौद्ध मूर्तिकला का केन्द्र बन गया। यहाँ भी बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ निर्मित होने लगीं। कुषाण-काल में ही वहाँ अनेक-मूर्तियाँ बनने लगी थीं। इसी युग की अभय मुद्रा में दो मीटर लम्बी बोधिसत्व की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इसका मुख और दाहिना हाथ जो अभय मुद्रा में ऊपर उठा था, भग्न कर दिया गया। मूर्ति के ऊपर छत्र तना हुआ था।

मथुरा के कला केन्द्रों में आंगिक विन्यास में जो चटपटापन था, उसके स्थान पर सारनाथ में अंग-प्रत्यंगों की गोल और लचीली कमनीयता का तक्षण होने लगा। सारनाथ की मूर्तियों में हाथ-पैरों का तक्षण, वस्त्र-विन्यास और आंगिक सौष्ठव अधिक स्पष्ट होने लगा। सारनाथ में बुद्ध प्रतिमा की विशेषता है बुद्ध का त्रिचीवर धारण करना। यदि बुद्ध चीवरधारी बताये गये हैं तो बोधिसत्वों की मूर्तियों में उनके आभूषण और परिधान गृहस्थों के समान बताये गये हैं।

गान्धार मूर्तिकला शैली—पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्त में कुषाण राजाओं के संरक्षण में गान्धार कला शैली का विकास हुआ। इस गान्धार शैली से बौद्ध मूर्तियाँ बनायी गयीं। इनमें से अनेक अफगानिस्तान में जलालाबाद, हड्डा और बामनिया में, यूसुफजई प्रदेश में, तक्षशिला, स्वात, काबुल नदी के प्रदेश व अन्य स्थानों में प्राप्त हुई हैं। गान्धार शैली में निर्मित बौद्ध मूर्तियों में ... अपेक्षा शारीरिक

Scanned with CamScanner

सौष्ठव का विन्यास विशेष है। इसी गान्धार शैली में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अन्य घटनाओं को तथा जातक कथाओं को भी पाषाण में उत्कीर्ण किया है। मानवीय रूप से बौद्ध की प्राचीनतम मूर्तियाँ गान्धार कला की ही हैं, गान्धार शैली में बुद्ध को यूनान के देवता अपोलो के शारीरिक सौन्दर्य के अनुकरण पर मानवीय सौन्दर्य के साथ निर्मित किया गया। बुद्ध के वस्त्रों पर जो सलवट या सिकुड़नें दिखायी गयी हैं, वे भी ग्रीक-रोमन मूर्तिकला की एक विशेषता है। गान्धार मूर्तिकला शैली की एक यह विशेषता भी है कि बुद्ध के अंगरक्षक के रूप में वज्रपाणि को उत्कीर्ण किया गया, जिसकी कल्पना का आधार यूनानी वीर हरक्यूलीज है।

गुप्त-युग की मूर्तिकला—गुप्त-युग में चौथी और पाँचवीं सदी में बुद्ध, बोधिसत्व तथा अन्य बौद्ध देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में बनायी गयीं। इस युग की मूर्तियों में सौन्दर्य और आध्यात्मिकता दोनों का समन्वय हुआ है। गुप्त-काल की मूर्तियों के मुख आध्यात्मिक आभा से प्रकाशित हैं और उनके प्रसन्न-वदन और नमित अवलोकन सब प्राणियों के प्रति बुद्ध की करुणा को प्रकट करने में समर्थ हैं। आध्यात्मिक अनुभूति और भावानुभाव की व्यंजना के लिए आंगिक विन्यास के साथ-साथ विविध आसनों और मुद्राओं को अपनाया गया है। गुप्तकालीन बुद्ध मूर्ति में बुद्ध के उदात्त व्यक्तित्व को प्रदर्शित किया गया है और अंगों में प्रशान्त लावण्य संयोजित किया गया है। मूर्तियों में आँखें अर्द्धमुदित हैं और हाथ उपदेशान्वित अभय-मुद्रा की अभिव्यक्ति करते हैं। मस्तक के पीछे प्रभा-मण्डल है जो मनोरम तक्षणों से अलंकृत है।

गुप्त-काल में मूर्ति-निर्माण के तीन केन्द्र थे—पाटलिपुत्र, मथुरा और सारनाथ। सुलतानगंज (बिहार) में प्राप्त बुद्ध मूर्ति पाटलिपुत्र केन्द्र की है। बोधगया में चौथी सदी की जो बोधिसत्व की मूर्ति प्राप्त हुई है वह मथुरा में निर्मित हुई थी। धर्मचक्र प्रवर्तन वाली बुद्ध की मूर्ति सारनाथ केन्द्र की बनी हुई है। इस मूर्ति में बुद्ध ध्यानासन में बैठे हैं और उनके हाथ अभय तथा शक्ति की व्यंजना करते हुए नाभि प्रदेश से ऊपर धर्मचक्र प्रवर्तन-मुद्रा में अवस्थित हैं। उनके पाँव वज्रपर्यंकासन मुद्रा में हैं। फाहियान ने बोधगया के मन्दिर में और उसके आस-पास गुप्त-युग की अनेक मूर्तियाँ देखीं और उनका वर्णन किया है। चूने और बालू-मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ गया मन्दिर के ताखों में प्रतिष्ठित थीं। आज भी सारनाथ संग्रहालय में गुप्त-काल की लगभग तीन सौ बौद्ध मूर्तियाँ रखी हैं।

पाल-काल की बौद्ध मूर्तिकला—बंगाल के पाल नरेशों के राज्याश्रय में भी बौद्ध मूर्तिकला विकसित और परिप्लावित होती रही। इस युग की मूर्तियाँ मुंगेर जिले की खड़गपुर पहाड़ी के स्लेट पत्थर की बनी होती थीं और उन मूर्तियों में आत्मिक विकास से कहीं अधिक आलंकारिक भाव हैं। उनमें आभूषणों की सजावट घनी बनायी गयी थी। पाल-युग में बुद्ध की मूर्तियों के अतिरिक्त तारादेवी, बोधिसत्व और मातृ-देवियों की अनेक मूर्तियाँ बनायी गयीं। बुद्ध की मूर्ति में उनकी करुणामय मुखाकृति और सुडौल अंगों का कलात्मक प्रदर्शन हुआ। इस काल में बनी बोधगया की बुद्ध मूर्ति पर्यंकासन पर बैठी है और उसके दोनों कर-कमल आगे गोद में एक पर एक स्थित दिखाये गये हैं। एक बड़ा कटोरा ऊपर वाले दूसरे हाथ की हथेली पर है और दाहिनी ओर एक वानर कटोरा लिये खड़ा है। इसी युग की एक अन्य बुद्ध प्रतिमा लक्खीसराय (मुंगेर) में मिली है जो पौने दो मीटर ऊँची अभय मुद्रा में है। इसके दाहिनी ओर ब्रह्मा और बायीं ओर इन्द्र मूर्ति पर छत्र ताने खड़े हैं। इस युग में बुद्ध की मूर्तियों में कहीं मस्तक पर मुकुट है, कहीं केश-पाश और जटा-जूट है, कहीं गले में

हार और माला हैं। ओदन्तपुरी में जो बुद्ध मूर्ति मिली है उसके सिर पर मुकुट
है, पर गले में हार है। नालन्दा में जो बुद्ध मूर्ति मिली है उसका सिर मुकुटमण्डित
और गले में एकावली झूल रही है। इस युग की एक अन्य विशाल बुद्ध प्रतिमा
जिले के "बिसुनपुर" गाँव में प्राप्त हुई है। यह भूमिस्पर्श मुद्रा में है और मस्तक
केश पाश जटा-जूट के रूप में प्रदर्शित किया गया है, आँख अर्द्ध निमीलित है
शरीर पर उत्तरीय वस्त्र झूल रहा है। भूमि-स्पर्श मुद्रा और वज्रपर्यंकासीन की
अन्य बुद्ध प्रतिमा भी इस युग की है जो कलकत्ता के संग्रहालय में है। यह दृष्टि
मूर्ति दुहरे और खिले कमल पर बैठी हुई है, मस्तक पर मुकुट और कण्ठ में हार
पर भुजाएँ अलंकार-विहीन और कान फटे हैं। यह पाल-काल के अन्तिम चरण
मूर्ति है और गोरख पंथ का प्रभाव प्रकट करती है। पाल-काल की बनी नालन्दा
अवलोकितेश्वर की जो मूर्ति मिली है, वह विष्णु की भाँति चतुर्भुज है। पाल युग
बौद्ध देवताओं की मूर्तियों की यह विशेषता रही है कि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदायों
सम्पूर्ण देवताओं के विभिन्न रूप उनमें दिखा दिये गये हैं। हिन्दू देवी-देवता की
भी विशेषता बौद्धों से छूटने नहीं पायी है।

दक्षिण भारत की बौद्ध मूर्तिकला---दक्षिण भारत में भी बुद्ध और बोधिसत्व
की मूर्तियाँ बनायी गयीं। सारनाथ की बौद्ध मूर्तिकला में यदि आध्यात्मिक प्रवृत्ति
ध्वनित होती है, तो दक्षिण भारत की मूर्तिकला कर्म-योग प्रवण है। इलौरा, अजन्ता
कार्ले, औरंगाबाद और कान्हेरी की मूर्तिकला में सारनाथ का प्रभाव धुंधला-सा है। इ
स्थानों की गुफाओं में बुद्ध और बोधिसत्वों की अगणित मूर्तियाँ निर्मित की गयीं; प
उनमें रसिकता या भाव प्रवणता का अभाव है, उनसे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त नहीं
होती। पर उनकी विशालता और बलशालिता दर्शनीय है। गौतम बुद्ध के निर्वाण का
दृश्य अजन्ता में, पाषाण में अतिशय सुन्दर और प्रभावोत्पादक ढंग से उत्कीर्ण किया
गया है।

धातु की बौद्ध मूर्तियाँ---

जाने ... थीं—स्थविर वादी ... की भी अभिवृद्धि हो रही थी तथा बौद्ध धर्म में मतभेद बढ़ता जा रहा था। अशोक ने तृतीय बौद्ध सम्मेलन का आयोजन करके इसे दबाने का प्रयास किया। मौर्य-युग में बौद्ध स्तूपों का निर्माण और उनकी पूजा प्रचलित थी, पर बुद्ध प्रतिमा की उपासना या पूजा का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

मौर्य-कला

मौर्य-काल में शान्ति-व्यवस्था, सुख-समृद्धि तथा राजकीय सम्पन्नता, वैभव और संरक्षण होने से कला के विकास को खूब प्रोत्साहन मिला। कला के विभिन्न अंगों का खूब विकास हुआ। जब लोग सुखी और सम्पन्न होते हैं, तब युग के शिल्पीगण भी अपनी प्रतिभा, कलाचातुर्य और कल्पना से कला के नये "अभिप्रायों" को पाषाण में सजीव करते हैं और कला की धारा को प्रवाहित करते हैं। राज्याश्रय इस धारा को और भी वेग दे देता है। मौर्य-युग में इन सब तत्वों के होने से मौर्ययुगीन कला उच्चकोटि की और अभूतपूर्व रही। मौर्य सम्राटों ने विशेषकर अशोक ने भव्य भवनों और कलापूर्ण स्मारकों का निर्माण कराया था, जिनके अवशेषों को आज भी कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने में माना जाता है। अशोक के पूर्व भवन, राजप्रासाद और अन्य कलाकृतियाँ ईंट और लकड़ी की बनायी जाती थीं, परन्तु अशोक के राज्यकाल से पाषाण का प्रयोग अत्यधिक कुशलता और बाहुल्य से किया गया। मौर्य कला का विश्लेषण और उसके विभिन्न स्मारक अग्रलिखित हैं :

(1) **नगर-निर्माण**—मौर्य सम्राट अशोक को नवीन नगर के निर्माण तथा उन्हें सुसज्जित करने की विशेष अभिरुचि थी। उसने कश्मीर प्रदेश में श्रीन तथा नेपाल में ललितपाटन नामक नगर बसाये और उन्हें भवनों से खूब सुसज्जि किया। नगर के चारों ओर ऊँची दीवार सुरक्षा के लिए होती थी। इसमें कुछ दरवाजे होते थे। दीवार के बाहर गहरी खाई होती थी। शहर की प्राचीरों में दिशाओं के चार प्रवेश द्वार होते थे और उनमें से जाने वाले राजमार्ग नगर के में मिलते थे। नगर में कई मंजिलों वाले भवन होते थे। इनमें कलात्मक और नक्काशी का बाहुल्य था जिससे ये भवन अधिक आकर्षक और सुन्दर प्रतीत थे। भवनों में काष्ठ की प्रचुरता थी।

मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र नगर भी विशाल था। यह समानान्तर भुज के आकार का बना हुआ था। यह नगर लगभग 16 किलोमीटर लम्बा 3 किलोमीटर चौड़ा था। नगर के चारों ओर लकड़ी की एक ऊँची दीवार थी जिस बीच-बीच में तीर छोड़ने के लिए अनेक छेद बने हुए थे। इस दीवार में 570 और 64 प्रवेश-द्वार थे। दीवार के बाहर चतुर्दिक लगभग 19 मीटर चौड़ी तीस हाथ गहरी खाई थी जो रण, सुरक्षा और नगर का मैला बहाने के लिए काम में आती थी। बिहार में पटना, बाँकीपुर रेलवे स्टेशन, कुमराहार ग्राम, इस ग्राम उत्तर में कल्लू और चमन नामक तालाबों में, और इनके आस-पास की बस्तियों पाटलिपुत्र के अवशेष आज भी उपलब्ध होते हैं। पाटलिपुत्र की लकड़ी की दीवार तथा मौर्य महलों के अवशेष कुमराहार गाँव के समीप प्राप्त हुए हैं।

(2) **राजप्रासाद**—मौर्यों के राजप्रासाद और भवन अत्यन्त ही भव्य, विशाल और सुन्दर होते थे। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में सुन्दर उद्यान के बीच प्रस मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का राजप्रासाद बड़ा विशाल और भव्य था। इसका सभा भवन ऊँचे स्तम्भों पर आधारित था और उन पर अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ अंकित थीं तथा चित्रकला का आकर्षक प्रदर्शन था। मेगस्थनीज ने इस राजप्रासाद की खूब प्रशंसा की है। उसके मतानुसार यह प्रासाद ईरान की राजधानी सूसा के राजप्रासाद से भी अधिक सुसज्जित, सुन्दर और भव्य था। समकालीन यूनानी लेखकों ने पाटलिपुत्र के भव्य राजमहलों के हवाले दिये हैं और वे उन्हें विश्व में सबसे अधिक सुन्दर तथा शानदार मानते हैं। सम्राट अशोक ने भी पाटलिपुत्र में सुन्दर राजप्रासाद और सभा-भवन निर्माण करवाये थे। अशोक का यह महल सातवीं सदी तक विद्यमान था। चीनी यात्री फाहियान ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसे देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया था और उसके मतानुसार इनकी रचना और निर्माण देवों ने किया, मनुष्यों ने नहीं। इस राजप्रासाद के कतिपय अवशेष प्राप्त हुए हैं जो पटना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें पुरुष का एक सिर तथा अन्य विविध वस्तुएँ हैं। इन पर वह लेप और चमक है जो मौर्य कला की अपनी विशेषता रही है।

(3) **स्तूप और चैत्य**—बौद्ध अनुश्रुति और साहित्य के अनुसार सम्राट अशोक ने अस्सी हजार स्तूप (ठोस अण्डाकार समाधि), चैत्य (बौद्धों के सामूहिक पूजा-मन्दिर) और बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के रहने तथा विश्राम करने के लिए अनेक विहार बनवाये। स्तूप गोल आकृति के आधार पर स्थित पाषाण या ईंटों का ठोस गुम्बद के आकार का होता है। बुद्ध या अन्य किसी बौद्ध सन्त महात्मा की अस्थियों, दाँत भस्म या अन्य अवशेषों पर अथवा बौद्ध धर्म के किसी पवित्र स्थान पर स्तूप निर्माण किये

जाते थे। अस्थियाँ, दाँत या भस्म अथवा अव
कलश में बन्द करके रख दिया जाता था और
बनाकर, गोलाकार गुम्बद बना दिया जाता थ
लिए पथ या "मेधि" रहती थी। मेधि तक प
के ऊपर अण्डाकार आकृति या गोल गुम्बदाव
और इसके ऊपर हर्मिका रहती थी। हर्मिक
कभी-कभी इस हर्मिका में भी अस्थि या भ
चारों ओर काष्ठ या पाषाण का घेरा होत
यह कभी सादी और कभी अलंकृत होती थ
होते थे। अशोक ने कई स्तूप बनवाये।
यात्री ह्वेनसांग ने तक्षशिला, श्रीनगर, थ
श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, वैशाली,
स्थानों में देखा था और इनकी ऊँचाई लग
100 मीटर तक होती थी। उसने तक्षशि
जिनमें से प्रत्येक लगभग 32 मीटर ऊँच
भग 96 मीटर ऊँचा था। तक्षशिला में
कपटलेक के अनुसार कुणाल को अन्धा
गया था और बाद में इसे परिवर्द्धित क
ने इस स्तूप को भी देखा था। उत्खन
यद्यपि आज अशोक के अधिकांश स्तूप
निर्मित धर्मराजिक स्पूत का निचला भ
ईंटों का एक विशाल स्तूप बनवाया थ
है। यह साँची के तीन स्तूपों में सब
परिवर्द्धित हुआ, पुस्तक में बौद्ध कला
में अशोक ने एक चैत्य (बौद्ध मन्दिर)
बोधिवृक्ष के चारों ओर लगभग सव
यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं सदी में
अशोक ने इस चैत्य और विहार के
निर्मित कराया।

(4) **पाषाण-वेष्टिनी और**
विहारों के चतुर्दिक पाषाण की वेदि
हुए हैं। बौद्ध गया में अशोक के
प्राप्त हुए हैं। इस वेदिका के स्तम
अंकित हैं, जिनके आधार पर इसे
सांग ने किया है। इस वेदिका के
पट्टिकाओं पर गोलाकार में
आकृतियाँ हैं और कहीं उनके
आकृतियाँ हैं। पशुओं में दौड़त
तीन हाथी बोधिवृक्ष के निकट
बोधिवृक्ष के पवित्र-पत्र और
धर्मचक्र रखा है और दो पुरुष

Scanned with CamScanner

(1) **नगर-निर्माण**—मौर्य सम्राट अशोक को नवीन नगर के निर्माण करने तथा उन्हें सुसज्जित करने की विशेष अभिरुचि थी। उसने कश्मीर प्रदेश में श्रीनगर तथा नेपाल में ललितपाटन नामक नगर बसाये और उन्हें भवनों से खूब सुसज्जित किया। नगर के चारों ओर ऊँची दीवार सुरक्षा के लिए होती थी। इसमें बुर्ज और दरवाजे होते थे। दीवार के बाहर गहरी खाई होती थी। शहर की प्राचीरों में चारों दिशाओं के चार प्रवेश द्वार होते थे और उनमें से जाने वाले राजमार्ग नगर के केन्द्र में मिलते थे। नगर में कई मंजिलों वाले भवन होते थे। इनमें कलात्मक अलंकरण और नक्काशी का बाहुल्य था जिससे ये भवन अधिक आकर्षक और सुन्दर प्रतीत होते थे। भवनों में काष्ठ की प्रचुरता थी।

मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र नगर भी विशाल था। यह समानान्तर चतुर्भुज के आकार का बना हुआ था। यह नगर लगभग 16 किलोमीटर लम्बा और 3 किलोमीटर चौड़ा था। नगर के चारों ओर लकड़ी की एक ऊँची दीवार थी जिसके बीच-बीच में तीर छोड़ने के लिए अनेक छेद बने हुए थे। इस दीवार में 570 बुर्ज और 64 प्रवेश-द्वार थे। दीवार के बाहर चतुर्दिक लगभग 19 मीटर चौड़ी और तीस हाथ गहरी खाई थी जो रण, सुरक्षा और नगर का मैला बहाने के लिए काम में आती थी। बिहार में पटना, बाँकीपुर रेलवे स्टेशन, कुमराहार ग्राम, इस ग्राम के उत्तर में कल्लू और चमन नामक तालाबों में, और इनके आस-पास की बस्तियों में पाटलिपुत्र के अवशेष आज भी उपलब्ध होते हैं। पाटलिपुत्र की लकड़ी की दीवार के तथा मौर्य महलों के अवशेष कुमराहार गाँव के समीप प्राप्त हुए हैं।

(2) **राजप्रासाद**—मौर्यों के राजप्रासाद और भवन अत्यन्त ही भव्य, विशाल और सुन्दर होते थे। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में सुन्दर उद्यान के बीच प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का राजप्रासाद बड़ा विशाल और भव्य था। इसका सभा भवन ऊँचे स्तम्भों पर आधारित था और उन पर अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ अंकित थीं तथा चित्रकला का आकर्षक प्रदर्शन था। मेगस्थनीज ने इस राजप्रासाद की खूब प्रशंसा की है। उसके मतानुसार यह प्रासाद ईरान की राजधानी सूसा के राजप्रासाद से भी अधिक सुसज्जित, सुन्दर और भव्य था। समकालीन यूनानी लेखकों ने पाटलिपुत्र में भव्य राजमहलों के हवाले दिये हैं और वे उन्हें विश्व में सबसे अधिक सुन्दर तथा शानदार मानते हैं। सम्राट अशोक ने भी पाटलिपुत्र में सुन्दर राजप्रासाद और सभा-भवन निर्माण करवाये थे। अशोक का यह महल सातवीं सदी तक विद्यमान था। चीनी यात्री फाहियान ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसे देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया था और उसके मतानुसार इनकी रचना और निर्माण देवों ने किया, मनुष्यों ने नहीं। इस राजप्रासाद के कतिपय अवशेष प्राप्त हुए हैं जो पटना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें पुरुष का एक सिर तथा अन्य विविध वस्तुएँ हैं। इन पर वह लेप और चमक है जो मौर्य कला की अपनी विशेषता रही है।

(3) **स्तूप और चैत्य**—बौद्ध अनुश्रुति और साहित्य के अनुसार सम्राट अशोक ने अस्सी हजार स्तूप (ठोस अण्डाकार समाधि), चैत्य (बौद्धों के सामूहिक पूजा-मन्दिर) और बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के रहने तथा विश्राम करने के लिए अनेक विहार बनवाये। स्तूप गोल आकृति के आधार पर स्थित पाषाण या ईंटों का ठोस गुम्बद के आकार का होता है। बुद्ध या अन्य किसी बौद्ध सन्त महात्मा की अस्थियों, दाँत भस्म या अन्य अवशेषों पर अथवा बौद्ध धर्म के किसी पवित्र स्थान पर स्तूप निर्माण किये

जाते थे। अस्थियाँ, दाँत या भस्म अथवा अवशेष को सोने के या अन्य किसी धातु के कलश में बन्द करके रख दिया जाता था और उस पर पाषाण या ईंटों का ठोस ढाँचा बनाकर, गोलाकार गुम्बद बना दिया जाता था। सबसे नीचे आधार पर परिक्रमा के लिए पथ या "मेधि" रहती थी। मेधि तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ रहती थीं। मेधि के ऊपर अण्डाकार आकृति या गोल गुम्बदाकार आकृति रहती थी। इसे गर्भ कहते थे और इसके ऊपर हर्मिका रहती थी। हर्मिका स्तूप के शिखर पर चौकोर होती थी। कभी-कभी इस हर्मिका में भी अस्थि या भस्म-कलश रख दिया जाता था। स्तूप के चारों ओर काष्ठ या पाषाण का घेरा होता था, जिसे वेदिका (Railing) कहते थे। यह कभी सादी और कभी अलंकृत होती थी और इसमें एक या अधिक तोरण द्वार होते थे। अशोक ने कई स्तूप बनवाये। अशोक के स्तूपों को सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तक्षशिला, श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कनौज, प्रयाग, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, वैशाली, गया, कपिलवस्तु, कुशीनगर, ताम्रलिप्ति आदि स्थानों में देखा था और इनकी ऊँचाई लगभग 22 मीटर, 32 मीटर, 64 मीटर और 100 मीटर तक होती थी। उसने तक्षशिला में अशोक द्वारा निर्मित तीन स्तूप देखे थे जिनमें से प्रत्येक लगभग 32 मीटर ऊँचा था। नगर द्वार पर जो स्तूप था वह लगभग 96 मीटर ऊँचा था। तक्षशिला में जिस स्थान पर अशोक की दन्तमुद्रा के अंकित कपटलेख के अनुसार कुणाल को अन्धा किया गया था, वहाँ कुणाल-स्तूप बना दिया गया था और बाद में इसे परिवर्द्धित कर विशाल स्तूप बना दिया गया था। ह्वेनसांग ने इस स्तूप को भी देखा था। उत्खनन में इस स्तूप के अवशेष प्राप्त हो गये हैं। यद्यपि आज अशोक के अधिकांश स्तूप नष्ट हो गये हैं, परन्तु सारनाथ में उसके द्वारा निर्मित धर्मराजिक स्तूप का निचला भाग आज भी विद्यमान है। साँची में अशोक ने ईंटों का एक विशाल स्तूप बनवाया था जिसका परिवर्द्धित रूप आज भी विद्यमान है। यह साँची के तीन स्तूपों में सबसे बड़ा है। (साँची स्तूप का वर्णन, जो बाद में परिवर्द्धित हुआ, पुस्तक में बौद्ध कला के अन्तर्गत अन्यत्र किया गया है।) बौद्ध गया में अशोक ने एक चैत्य (बौद्ध मन्दिर) और विहार निर्मित कराया था और सम्भव है बोधिवृक्ष के चारों ओर लगभग सवा तीन मीटर ऊँची दीवार भी बनवायी थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं सदी में इन्हें देखा था। उसने इसका वर्णन किया है। अशोक ने इस चैत्य और विहार के नष्ट होने पर बाद में वहाँ आधुनिक बौद्ध मन्दिर निर्मित कराया।

(4) **पाषाण-वेष्टिनी और वेदिका (Railing)**—मौर्यों के समस्त स्तूपों और विहारों के चतुर्दिक पाषाण की वेष्टिनी बनायी जाती थी। इनके कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं। बौद्ध गया में अशोक के चैत्य के बाहर चतुर्दिक वेदिका थी। इसके भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। इस वेदिका के स्तम्भ दो मीटर ऊँचे थे। इसके पाषाणों पर कुछ लेख अंकित हैं, जिनके आधार पर इसे मौर्यकालीन माना गया है और जिनका वर्णन ह्वेनसांग ने किया है। इस वेदिका के खम्भों व उनको जोड़ने वाली लम्बी पाषाण शिला पट्टिकाओं पर गोलाकार में कमल बने हैं। उनके भीतर कहीं कमल की विविध आकृतियाँ हैं और कहीं उनके बीच में ही पशु बने हुए हैं। इनमें से कुछ मनुष्य की आकृतियाँ हैं। पशुओं में दौड़ता हुआ घोड़ा, हाथी, मकर आदि हैं। एक आकृति में तीन हाथी बोधिवृक्ष के निकट भगवान बुद्ध की पूजा करने आये हैं। एक अर्द्धचित्र में बोधिवृक्ष के पवित्र-पत्र और मालाएँ तथा एक अन्य अर्द्धचित्र में वज्रासन के समीप धर्मचक्र रखा है और दो पुरुष हाथ जोड़े खड़े हैं। ये बुद्ध के प्रतीकचिह्नों की पूजा के

Scanned with CamScanner

दृश्य हैं। इससे प्रतीत होता है कि उस समय बुद्ध की प्रतिमा की पूजा प्रचलित नहीं थी। इसी वेदिका के अन्य अर्द्धचित्रों में राजाओं, रानियों और स्त्रियों की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। 'अर्द्धचित्र' से तात्पर्य है पाषाण में उत्कीर्ण वे मूर्तियाँ या दृश्य जो पाषाण की शिलाओं पर एक ही ओर खोदकर उभारे गये हैं। ये काठ में की गयी खुदाई जैसे जान पड़ते हैं। मूर्ति पाषाण के चारों ओर से काटकर बनायी जाती है परन्तु अर्द्धचित्र पाषाण में एक ही ओर काटे जाते हैं। शिल्पी उसमें जितनी गहराई ले आता है, अंग-प्रत्यंग उतने ही अधिक सौष्ठवमय और सुडौल दृष्टिगोचर होने लगते हैं। साँची और भरहुत के स्तूपों में पाषाण में अनेक अर्द्धचित्र उत्कीर्ण किये गये हैं।

वाराणसी के समीप सारनाथ में अशोक के समय में निर्मित हुई एक पाषाण वेष्टिनी प्राप्त हुई है। यह सारनाथ में बौद्ध विहार के प्रमुख मन्दिर के दक्षिण भाग वाले गृह में ईंट के एक छोटे स्तूप के चतुर्दिक लगी हुई प्राप्त हुई। यह पूरी पाषाण की बनी हुई है तथा अत्यन्त ही आकर्षक, सुन्दर और चिकनी है। "सवहिका" नामक किसी सज्जन ने इस वेष्टिनी के निर्माण का व्यय वहन किया था; क्योंकि "सवहिका" नाम उस वेष्टिनी पर उत्कीर्ण है। प्राचीन पाटलिपुत्र के अवशेषों में भी इसी प्रकार की तीन पाषाण वेष्टिनियों के खण्ड प्राप्त हुए हैं, ये इतिहासकारों ने मौर्ययुगीन बताये हैं। साँची के समीप विदिशा में भी वेसनगर नामक स्थान पर इसी प्रकार की एक अन्य पाषण वेष्टिनी प्राप्त हुई है। इस पर नाना प्रकार के दृश्य और चित्र उत्कीर्ण हैं। इसे भी मौर्ययुगीन माना गया है। साँची के स्तूप के चतुर्दिक भी ऐसी ही कला-पूर्ण पाषाण वेष्टिनियाँ हैं। ये पाषाण वेष्टिनियाँ कला की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं।

(5) **गुहा-गृह**—पर्वतों की गुफाओं की चट्टानों को काटकर उनमें कक्ष या कमरे और सभागृह बनाने की कला का सूत्रपात मौर्य-युग में हुआ। गुहा-गृहों की यह कला कालान्तर में इलोरा, अजन्ता और बाग तथा धर्मराजेश्वर (श्यामगढ़ स्टेशन के समीप मन्दसौर जिला, मध्य प्रदेश में) की गुहाकला के रूप में विकसित हुई। मौर्य सम्राट अशोक और दशरथ ने आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं के लिए गया के समीप पहाड़ियों में गुहा-गृह निर्माण किये थे। इनकी दीवारों पर चिकनी और चमकदार पॉलिश की गयी थी।

(6) **पाषाण-स्तम्भ**—मौर्य-काल की कला के उत्कृष्ट नमूने पाषाण-स्तम्भ हैं। मौर्य-युग की समस्त कलाकृतियों में अशोक द्वारा निर्मित और स्थापित पाषाण-स्तम्भ सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अभूतपूर्व हैं। अशोक ने अपने उदार धार्मिक और प्रशासकीय विचार पाषाण के स्तम्भों पर उत्कीर्ण करा दिये। अपने धर्मलेखों, राज-घोषणाओं तथा आदेशों को जनसाधारण के हित में प्रसारित करने के लिए अशोक ने लगभग तीस-चालीस पाषाण-स्तम्भ देश के विभिन्न प्रान्तों और प्रदेशों में खड़े किये। ये स्तम्भ लगभग 16 मीटर ऊँचे और वजन में लगभग 80 टन होते थे और एक ही पाषाण को काटकर बनाये जाते थे। प्रत्येक स्तम्भ के तीन भाग होते हैं। प्रथम, स्तम्भ का मोटा गोल तना जो अत्यन्त ही सादा पर अत्यन्त ही चिकना और चमकीला होता है। इसका कुछ भाग जमीन में दबा रहता है। द्वितीय, गला या गोलदण्ड के आकार का भाग जो अधिक लम्बा होता है और ऊपर गोलाई में धीरे-धीरे कम होता जाता है। तृतीय, शीर्ष भाग जो स्तम्भ के ऊपर रहता है। यह शीर्ष स्तम्भ से जुड़ा रहता है और पाषाण का अलग भाग होता है। यह सारा स्तम्भ बिहार के चुनार के बलुए या रेतीले लाल पत्थर का बना होता है। ऐसे विशाल भीमकाय लम्बे पाषाण

स्तम्भों को बिहार से भारत के दूर-दूर प्रदेशों तक ले
तत्कालीन इन्जीनियरिंग या तकनीकी कला का अनूठा
की मेखला उत्कीर्ण रहती है। उसके ऊपर पंखुड़ियों
शीर्ष की ओर झुकी रहती हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने
आकृति माना है और ईरानी प्रभाव समझा है, पर यह
यह बौद्ध धर्म में पवित्र माना हुआ कमल और उसकी
एक पतली-सी कण्ठी खुदी हुई है, जिस पर नक्काशी है
है जो वर्गाकार या गोल दोनों प्रकार की होती है। इस
के भाग पर कमल पुष्पों, कलियों और पशुओं की आकृ
सारनाथ स्तम्भ की इस चौकी की बाजू पर चार
उनके बीच में हाथी, अश्व, बैल और सिंह की आकृति
स्तम्भ का शीर्ष आधारित रहता है। इस शीर्ष में चौ
हाथी और कभी सिंह की सजीव प्रतिमाएँ रहती हैं।
शीर्ष पर सिंह है, सांकश्य (वर्तमान संखिया) के स्तम्भ
के स्तम्भ पर बैल की आकृति है। इसका शरीर मांस
हुए हैं तथा अंग-प्रत्यंग अनुपात युक्त और सुडौल हैं
दुलभ है। आजकल यह राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली
वहाँ की शोभा बढ़ा रहा है। सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष
सर मिलाये बैठे हैं। इनके ऊपर धर्मचक्र रखा था
स्तम्भ पर भी, जो टूट गया है, ऐसे ही चार सिंह एक

शीर्ष के नीचे स्तम्भ के आकारदण्ड भाग में
आदेश, धार्मिक विचार, उपदेश आदि अंकित रहते हैं
है। स्तम्भ के गोल दण्ड और शीर्ष भाग पर चिकनी
चिकना और चमकीला किया जाता था। इस चमकी
कला की विशिष्टता है, साधारण कला-चातुर्य प्रकट

अशोक के ऐसे स्तम्भ सारनाथ, साँची,
रामपुरवा, कौशाम्बी, प्रयाग, दिल्ली आदि स्थानों
सारनाथ स्तम्भ जिसे उसने बुद्ध के धर्मचक्र-प्रवर्तक
समस्त स्तम्भों में अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ और कलापू
के नीचे गोल चौकी पर हाथी, बैल, सिंह और घोड़े
की गयी हैं। ये चारों ओर दौड़ते हुए अंकित किये ग
के प्रतीक के रूप में आँके गये हैं। सिंह शौर्य, नि
तथा हाथी चातुर्य, विचारशीलता और ऐश्वर्य का प्र
के ये प्रिय पशु हैं जिनमें से एक के सहारे उन्होंने
को साथ लेकर अपने राज्य का विस्तार किया औ
चारों पशुओं के बीचबीच में चार धर्मचक्र अंकित
के प्रतीक हैं। इन चारों पशुओं और धर्मचक्रों
सजीव आकृतियाँ हैं। चारों की पीठ सटी हुई और
दिशाओं की ओर हैं। सिंहों की इन मूर्तियों

Scanned with CamScanner

स्तम्भों को बिहार से भारत के दूर-दूर प्रदेशों तक ले जाना और उन्हें खड़ा करना तत्कालीन इन्जीनियरिंग या तकनीकी कला का अनूठा और प्रशंसनीय कार्य रहा है।

मौर्य-युग के पाषाण-स्तम्भ के बीच के गोलदण्ड के ऊपरी भाग पर एक पतली-सी मेखला उत्कीर्ण रहती है। उसके ऊपर पंखुड़ियों वाला कमल है। ये पंखुड़ियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे उल्टे लटके हुए घण्टी की आकृति माना है और ईरानी प्रभाव समझा है, पर यह तथ्यहीन और भ्रममूलक है। यह बौद्ध धर्म में पवित्र माना हुआ कमल और उसकी पंखुड़ियाँ हैं। कमल के ऊपर एक पतली-सी कण्ठी खुदी हुई है, जिस पर नक्काशी है। इसके ऊपर एक चौकी रहती है जो वर्गाकार या गोल दोनों प्रकार की होती है। इस चौकी की बाजू के चारों ओर के भाग पर कमल पुष्पों, कलियों और पशुओं की आकृतियों का अलंकरण रहता है। सारनाथ स्तम्भ की इस चौकी की बाजू पर चार दिशाओं में चार धर्मचक्र हैं और उनके बीच में हाथी, अश्व, बैल और सिंह की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इस चौकी पर स्तम्भ का शीर्ष आधारित रहता है। इस शीर्ष में चौकी के ऊपर कभी वृषभ, कभी हाथी और कभी सिंह की सजीव प्रतिमाएँ रहती हैं। लोरिया नन्दनगढ़ के स्तम्भ के शीर्ष पर सिंह है, सांकश्य (वर्तमान संखिया) के स्तम्भ शीर्ष पर हाथी है, रामपुरवा के स्तम्भ पर बैल की आकृति है। इसका शरीर मांसल और बलिष्ठ है, कान खड़े हुए हैं तथा अंग-प्रत्यंग अनुपात युक्त और सुडौल है। बैल का इतना सजीव अंकन दुर्लभ है। आजकल यह राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली के प्रवेश-द्वार पर रखा है और वहाँ की शोभा बढ़ा रहा है। सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष पर चार सिंह अपनी पीठ परस्पर मिलाये बैठे हैं। इनके ऊपर धर्मचक्र रखा था जो अब हट गया है। साँची के स्तम्भ पर भी, जो टूट गया है, ऐसे ही चार सिंह एक-दूसरे से पीठ मिलाये खड़े हैं।

शीर्ष के नीचे स्तम्भ के आकारदण्ड भाग में अशोक की आज्ञाएँ, घोषणाएँ, आदेश, धार्मिक विचार, उपदेश आदि अंकित रहते हैं। इसे "धम्म लिपि" कहा गया है। स्तम्भ के गोल दण्ड और शीर्ष भाग पर चिकनी पॉलिश कर उन्हें शीशे के समान चिकना और चमकीला किया जाता था। इस चमकीली पॉलिश से, जो मौर्य-युग की कला की विशिष्टता है, साधारण कला-चातुर्य प्रकट होता है।

अशोक के ऐसे स्तम्भ सारनाथ, साँची, रुम्मिनदेई, लौरिया-नन्दनगढ़, रामपुरवा, कौशाम्बी, प्रयाग, दिल्ली आदि स्थानों में उपलब्ध होते हैं। अशोक का सारनाथ स्तम्भ जिसे उसने बुद्ध के धर्मचक्र-प्रवर्तक के स्थान पर खड़ा किया था, इन समस्त स्तम्भों में अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ और कलापूर्ण है। सारनाथ स्तम्भ में शीर्ष के नीचे गोल चौकी पर हाथी, बैल, सिंह और घोड़े की सजीव आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। ये चारों ओर दौड़ते हुए अंकित किये गये हैं। ये चारों पशु चारों दिशाओं के प्रतीक के रूप में अंकि गये हैं। सिंह शौर्य, निर्भीकता और स्फूर्ति का प्रतीक है तथा हाथी चातुर्य, विचारशीलता और ऐश्वर्य का प्रतीक है। वृषभ और अश्व आर्यों के वे प्रिय पशु हैं जिनमें से एक के सहारे उन्होंने भूमि को उर्वरा बनाया और दूसरे को साथ लेकर अपने राज्य का विस्तार किया और संस्कृति का प्रसार किया। इन चारों पशुओं के बीच-बीच में चार धर्मचक्र अंकित हैं जो बौद्ध धर्म के धर्मचक्र प्रवर्तन के प्रतीक हैं। इन चारों पशुओं और धर्मचक्रों के ऊपर शीर्ष पर चार सिंह की सजीव आकृतियाँ हैं। चारों की पीठ सटी हुई और चारों के मुख अलग-अलग चारों दिशाओं की ओर है। सिंहों की इन मूर्तियों के नेत्रों में छेद हैं। पहले इनमें

स्तम्भों को बिहार से भारत के दूर-दूर प्रदेशों तक ले जाना और उन्हें खड़ा करना तत्कालीन इन्जीनियरिंग या तकनीकी कला का अनूठा और प्रशंसनीय कार्य रहा है।

मौर्य-युग के पाषाण-स्तम्भ के बीच के गोलदण्ड के ऊपरी भाग पर एक पतली-सी मेखला उत्कीर्ण रहती है। उसके ऊपर पंखुड़ियों वाला कमल है। ये पंखुड़ियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे उल्टे लटके हुए घण्टी की आकृति माना है और ईरानी प्रभाव समझा है, पर यह तथ्यहीन और भ्रममूलक है। यह बौद्ध धर्म में पवित्र माना हुआ कमल और उसकी पंखुड़ियाँ हैं। कमल के ऊपर एक पतली-सी कण्ठी खुदी हुई है, जिस पर नक्काशी है। इनके ऊपर एक चौकी रहती है जो वर्गाकार या गोल दोनों प्रकार की होती है। इस चौकी की बाजू के चारों ओर के भाग पर कमल पुष्पों, कलियों और पशुओं की आकृतियों का अलंकरण रहता है। सारनाथ स्तम्भ की इस चौकी की बाजू पर चार दिशाओं में चार धर्मचक्र हैं और उनके बीच में हाथी, अश्व, बैल और सिंह की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इस चौकी पर स्तम्भ का शीर्ष आधारित रहता है। इस शीर्ष में चौकी के ऊपर कभी वृषण, कभी हाथी और कभी सिंह की सजीव प्रतिमाएँ रहती हैं। लोरिया नन्दनगढ़ के स्तम्भ के शीर्ष पर सिंह है, सांकश्य (वर्तमान संखिया) के स्तम्भ शीर्ष पर हाथी है, रामपुरवा के स्तम्भ पर बैल की आकृति है। इसका शरीर मांसल और बलिष्ठ है, कान खड़े हुए हैं तथा अंग-प्रत्यंग अनुपात युक्त और सुडौल हैं। बैल का इतना सजीव अंकन दुर्लभ है। आजकल यह राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली के प्रवेश-द्वार पर रखा है और वहाँ की शोभा बढ़ा रहा है। सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष पर चार सिंह अपनी पीठ पर-स्पर मिलाये बैठे हैं। इनके ऊपर धर्मचक्र रखा था जो अब हट गया है। साँची के स्तम्भ पर भी, जो टूट गया है, ऐसे ही चार सिंह एक-दूसरे से पीठ मिलाये खड़े हैं।

शीर्ष के नीचे स्तम्भ के आकारदण्ड भाग में अशोक की आज्ञाएँ, घोषणाएँ, आदेश, धार्मिक विचार, उपदेश आदि अंकित रहते हैं। इसे "धम्म लिपि" कहा गया है। स्तम्भ के गोल दण्ड और शीर्ष भाग पर चिकनी पॉलिश कर उन्हें शीशे के समान चिकना और चमकीला किया जाता था। इस चमकीली पॉलिश से, जो मौर्य-युग की कला की विशिष्टता है, साधारण कला-चातुर्य प्रकट होता है।

अशोक के ऐसे स्तम्भ सारनाथ, साँची, रुम्मिनदेई, लौरिया-नन्दनगढ़, रामपुरवा, कौशाम्बी, प्रयाग, दिल्ली आदि स्थानों में उपलब्ध होते हैं। अशोक का सारनाथ स्तम्भ जिसे उसने बुद्ध के धर्मचक्र-प्रवर्तक के स्थान पर खड़ा किया था, इन समस्त स्तम्भों में अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ और कलापूर्ण है। सारनाथ स्तम्भ में शीर्ष के नीचे गोल चौकी पर हाथी, बैल, सिंह और घोड़े की सजीव आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। ये चारों ओर दौड़ते हुए अंकित किये गये हैं। ये चारों पशु चारों दिशाओं के प्रतीक के रूप में आँके गये हैं। सिंह शौर्य, निर्भीकता और स्फूर्ति का प्रतीक है तथा हाथी चातुर्य, विचारशीलता और ऐश्वर्य का प्रतीक है। वृषभ और अश्व आर्यों के वे प्रिय पशु हैं जिनमें से एक के सहारे उन्होंने भूमि को उर्वरा बनाया और दूसरे को साथ लेकर अपने राज्य का विस्तार किया और संस्कृति का प्रसार किया। इन चारों पशुओं के बीच-बीच में चार धर्मचक्र अंकित हैं जो बौद्ध धर्म के धर्मचक्र प्रवर्तन के प्रतीक हैं। इन चारों पशुओं और धर्मचक्रों के ऊपर शीर्ष पर चार सिंह की सजीव आकृतियाँ हैं। चारों की पीठ सटी हुई और चारों के मुख अलग-अलग चारों दिशाओं की ओर हैं। सिंहों की इन मूर्तियों के नेत्रों में छेद हैं। पहले इनमें

Scanned with CamScanner

चमकीली मणियाँ थीं जिनसे सिंहों के नेत्र दीप्तमान हो उठते थे। पर मणियाँ निकाल ली गयीं हैं, अब केवल मणियों के चिह्न के छेद अवशेष हैं। इन सिंहों की उभरती हुई शक्ति, उनकी तनी हुई शिराएँ, खड़े कान, तने हुए शरीर के पुट्ठे और माँसपेशियाँ, उनकी केशराशि के लहराते हुए केश, उनके गठीले अंग-प्रत्यंग अत्यन्त ही सूक्ष्मता और चतुराई से उत्कीर्ण किये गये हैं। एक प्रकार के लेप या पॉलिश से यह समस्त शीर्ष और पशुओं की आकृतियाँ अत्यन्त ही चिकनी, चमकदार, आकर्षक और सुन्दर कर दी गयी हैं। सिंह की मूर्तियों में शौर्य, तेज, ओच, सुन्दरता, कल्पना और स्वाभाविकता का सम्मिश्रण है। कलामर्मज्ञों का मत है कि ये स्तम्भ भारतीय शिल्प के श्रेष्ठ और उत्तम उदाहरण हैं।

(7) **मूर्ति-कला**— मौर्य-काल में मनुष्यों, यक्ष-यक्षणियों, गंधर्वों, देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों आदि की प्रतिमाएँ बनायी जाती थीं। इस काल की मूर्तियों में मथुरा के समीप परखम में प्राप्त यक्षमूर्ति, परखम के समीप बरोदा में प्राप्त भग्न यक्ष की मूर्ति, विदिशा (बेसनगर) में प्राप्त यक्षिणी की प्रतिमा, पटना और दीदारगंज में प्राप्त अन्य मूर्तियाँ और यक्ष प्रतिमाएँ, भरतपुर के समीप नोहगाँव में मिली यक्ष प्रतिमा तथा बम्बई राज्य में मिली यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। यक्षों की कल्पना लोक-जीवन से उदय हुई थी और गाँवों में उनकी उपासना होती थी। मनुष्य जिसे बड़ा समझता है और उसकी आराधना करता है उसको कभी-कभी विशालता व महानता प्रकट करने के लिए बड़े भव्य आकार में बलिष्ठ व माँसल शरीर में अंकित करता है। परखम में प्राप्त यक्ष की मूर्ति लगभग सवा दो मीटर ऊँची है और भूरे बलुए (रेतीले) पाषाण की है। इसके ऊपर सुन्दर चमकीली मौर्ययुगीन पॉलिश है। इस मूर्ति में यक्ष बलिष्ठ और स्थूलकाय है, उसका उदर भी कुछ बाहर निकला है। वह घुटनों के नीचे तक धोती पहने है। कमर में दुपट्टा बँधा है। उसमें सामने की ओर गाँठ लगी है और दुपट्टे के दोनों छोर नीचे लटक रहे हैं। वक्षस्थल पर भी एक दुपट्टा है, जिसका एक छोर लटक रहा है। उसके गले में कई लड़ियों की माला है, जिसके बीच में चौकोर ठप्पे बने हैं। इस माला के अतिरिक्त कण्ठा भी है। यह यक्ष मूर्ति मथुरा के संग्रहालय में है। बरोदा की यक्ष प्रतिमा की छाती पर भी दुपट्टा बँधा है। गले में मोटा कण्ठा है जिसके चार फुंदने पीछे पीठ पर लटके हैं। पटना में प्राप्त यक्ष मूर्तियों की वेशभूषा भी ऐसी ही है। दीदारगंज में प्राप्त चँवरधारिणी स्त्री की प्रतिमा श्रेष्ठ है। इस मूर्ति में स्त्री के दाहिने हाथ में चँवर है, गले में मालाएँ हैं, हाथ चूड़ियों से भरा है, मस्तिष्क पर मुकुट है और खुली केशराशि पीछे पीठ पर झूल रही है। नारी मूर्ति के मस्तिष्क पर किरीट प्रथम बार दृष्टिगोचर होता है। इसके बाद की प्रतिमाओं में वह प्राप्त नहीं होता है। इस चँवरधारिणी प्रतिमा में मौर्य कला की प्रौढ़ता दिखायी देती है। मूर्ति में अंग-प्रत्यंग सुडौल हैं, उसमें सौष्ठव और लालित्य का समन्वय है। बम्बई राज्य में प्राप्त यक्ष प्रतिमाएँ परखम यक्ष जैसी ही विशाल हैं। पर वे कोरकर बनायी गयी हैं। ये अर्द्धचित्र-सी प्रतीत होती हैं। इनमें यक्ष धोती पहने है। उसके ऊपर एक दुपट्टा बँधा है, जिसके दोनों छोर लटक रहे हैं। उसके समीप ही एक यक्षिणी खड़ी है। वह महीन चुन्नटदार धोती पहने है। उसमें से उसके अंग झलक रहे हैं। धोती पर एक पट्टा बँधा हुआ है, मस्तिष्क पर साफे जैसी वस्तु है। हाथों में आभूषण हैं और पैरों में मोटे कड़े हैं। वेसनगर की स्त्री मूर्ति भी सुन्दर और आकर्षक है और लगभग सवा दो मीटर ऊँची है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त मौर्य-

युग की जैन तीर्थंकरों की उच्च कोटि की
के पौत्र सम्प्रति के शासनकाल की मानी
आकृति, वेशभूषा और अलंकरण देखने से
का खूब विकास हो चुका था।

(8) **प्रेक्षागृह**—मौर्य-युग लोगों
प्रकार के उत्सवों और समारोहों के अति
रखते थे। संस्कृति के महाकवि भास के
गृहों (नाट्यगृहों) से स्पष्ट है कि मौर्य-
चुका था और अभिनय कला का विकास
रामगढ़ पहाड़ियों को काटकर बनाये हुए
ईसा पूर्व तीसरी सदी के कुछ ऐसे शिल
नाटक होते थे।

(9) **शिलालेख**—मौर्य सम्राट अ
उपदेशों, सूचनाओं, धार्मिक और नैतिक
लोगों तक पहुँचाने के लिए अनेक शिल
साधारण के राजपथ के किनारे पर्वती
सकें और उनका पालन कर सकें, कुछ
स्तम्भों पर अंकित करवाये। अशोक के
के सीमावर्ती प्रदेशों में पाये गये हैं, पर
रिक प्रदेशों में प्राप्त हुए हैं। उसके चौ
ही पाषाण पर खुदे हुए थे, आठ स्थानों
ये आठ प्रतियाँ आठ स्थानों पर मिली
के पेशावर जिले में शाहबाजगढ़ी, (2)
देहरादून जिले में यमुना तट पर कालसी
में भुवनेश्वर के समीप धौली ग्राम, (6
(7) मद्रास राज्य में गंजम नगर के स
जिले में देवगुड़ी (इरागुड़ी) ग्राम में दो
जीवन और धर्म के स्वरूप का वर्णन है
कहीं उनके संशोधित रूप पाँच स्थानों
के जबलपुर जिले में रूपनाथ गाँव, (2
कस्बे के पास चन्दन पीर की पहाड़ी गु
में सिद्धगीर पहाड़ी, (4) आन्ध्र प्रदेश
राज्य के चीतलदुर्ग में तीन स्थान—
रामेश्वर। थोड़े से पाठ भेद के साथ
जटिंगा—रामेश्वर से प्राप्त हुआ है।
शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमें कलिंग
शिला के राज्यपालों को दिये आदेशों
स्थान में जयपुर के समीप बैराट नगर
प्राचीन काल में यहाँ एक बौद्ध विहार
यहाँ इसलिए उत्कीर्ण करवाया था कि

Scanned with CamScanner

युग की जैन तीर्थंकरों की उच्च कोटि की सजीव मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। ये अशोक के पौत्र सम्प्रति के शासनकाल की मानी जाती हैं। इन मूर्तियों की सजीवता, सुन्दरता, आकृति, वेशभूषा और अलंकरण देखने से आभास होता है कि मौर्य-युग में मूर्तिकला का खूब विकास हो चुका था।

(8) **प्रेक्षागृह**—मौर्य-युग लोगों के आमोद-प्रमोद के लिए प्रसिद्ध था। विभिन्न प्रकार के उत्सवों और समारोहों के अतिरिक्त लोग अभिनय और नाटकों में भी रुचि रखते थे। संस्कृति के महाकवि भास के नाटकों और 'अर्थशास्त्र' में उल्लिखित प्रेक्षा-गृहों (नाट्यगृहों) से स्पष्ट है कि मौर्य-युग में रंगशाला और नाट्यगृहों का निर्माण हो चुका था और अभिनय कला का विकास हो गया था। मध्य प्रदेश में सरगुजा की रामगढ़ पहाड़ियों को काटकर बनाये हुए गुहा भवनों में प्रेक्षागृहों के नमूने हैं। इनमें ईसा पूर्व तीसरी सदी के कुछ ऐसे शिलालेख हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि गुहा-गृहों में नाटक होते थे।

(9) **शिलालेख**—मौर्य सम्राट अशोक ने अपनी राज्याज्ञाओं, आदेशों, घोषणाओं, उपदेशों, सूचनाओं, धार्मिक और नैतिक सिद्धान्तों, धर्म विजय आदि को साधारण लोगों तक पहुँचाने के लिए अनेक शिलालेख लगवाये। उसने कुछ शिलालेख जन-साधारण के राजपथ के किनारे पर्वती चट्टानों पर खुदवाये, जिससे पथिक उन्हें पढ़ सकें और उनका पालन कर सकें, कुछ शिलालेख उसने विशाल पाषाण के गोल स्तम्भों पर अंकित करवाये। अशोक के शिलाखण्ड या चट्टानों के लेख उसके साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों में पाये गये हैं, पर उसके पाषाण स्तम्भ लेख साम्राज्य के आन्तरिक प्रदेशों में प्राप्त हुए हैं। उसके **चौदह वृहद् शिलालेख** जो एक के बाद एक, एक ही पाषाण पर खुदे हुए थे, आठ स्थानों पर पाये गये हैं। उसके चौदह शिलालेखों की ये आठ प्रतियाँ आठ स्थानों पर मिली हैं। इन स्थानों के नाम हैं—(1) पाकिस्तान के पेशावर जिले में शाहबाजगढ़ी, (2) पाकिस्तान में हजारा जिले में मानसेरा, (3) देहरादून जिले में यमुना तट पर कालसी ग्राम, (4) सौराष्ट्र में गिरनार, (5) उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप धौली ग्राम, (6) बम्बई राज्य में थाना जिले का सुपारा ग्राम, (7) मद्रास राज्य में गंजम नगर के समीप जौगढ़ गाँव, (8) आन्ध्र प्रदेश के कर्नूल जिले में देवगुड़ी (इरागुड़ी) ग्राम में **दो लघु शिलालेख हैं**। इनमें अशोक के व्यक्तिगत जीवन और धर्म के स्वरूप का वर्णन है। इन दो लघु शिलालेखों की पूर्ण प्रतियाँ और कहीं उनके संशोधित रूप पाँच स्थानों पर मिले हैं। इनके नाम हैं—(1) मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में रूपनाथ गाँव, (2) बिहार राज्य में शाहाबाद जिले में सहसराम कस्बे के पास चन्दन पीर की पहाड़ी गुफा, (3) राजस्थान में जयपुर के निकट बैराट में सिंहगीर पहाड़ी, (4) आन्ध्र प्रदेश में रायचूर जिले का मस्की गाँव, (5) मैसूर राज्य के चीतलदुर्ग में तीन स्थान—सिद्धपुर (सिंहपुर), ब्रह्मगिरी और जतिंगा—रामेश्वर। थोड़े से पाठ भेद के साथ एक ही शिलालेख सिंहपुर, ब्रह्मगिरी और जतिंगा—रामेश्वर से प्राप्त हुआ है। **कलिंग शिलालेख**—कलिंग में अशोक के **दो शिलालेख** प्राप्त हुए हैं। इनमें कलिंग के प्रशासन के सिद्धान्तों का उज्जैन तथा तक्षशिला के राज्यपालों को दिये आदेशों का वर्णन है। **एक लघु शिलाखण्ड लेख**—राजस्थान में जयपुर के समीप बैराट नगर के पास पर्वतीय चट्टान पर यह लेख अंकित है। प्राचीन काल में यहाँ एक बौद्ध विहार था और अशोक ने इस शिलाखण्ड लेख को यहाँ इसलिए उत्कीर्ण करवाया था कि विहार में निवास करने वाले भिक्षु-भिक्षुणियाँ

Scanned with CamScanner

और वहाँ आने-जाने वाले पथिक और उपासक इस लेख को पढ़ सकें और उसका पालन कर सकें। इस लेख में बौद्ध धर्म के प्रख्यात सात ग्रन्थों और उनमें से लिये गये उद्धरणों का उल्लेख है। अशोक की अभिलाषा थी कि भिक्षु उनका विशेष रूप से अध्ययन करें, अनुशीलन करें और उनमें बताये हुए सिद्धान्तों का पालन करें। **सात स्तम्भ लेख**—अशोक ने पाषाण के विशाल स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण करवाये थे। इन लेखों में अशोक को धार्मिक और राजनीतिक घोषणाएँ और उसके धार्मिक कार्यों का विवरण अंकित किया गया है। छः स्तम्भ जिन पर सात शिलालेख की प्रतियाँ अंकित हैं, निम्न स्थानों पर हैं—(1) दिल्ली के समीप तोपरा गाँव; जहाँ से स्तम्भ को फिरोजशाह तुगलक ने हटाकर दिल्ली मँगवा लिया था। (2) दिल्ली, यहाँ फिरोजशाह तुगलक मेरठ से स्तम्भ ले आया था। (3) प्रयाग, यहाँ का स्तम्भ पहले कौशाम्बी में था, उसे अकबर इलाहाबाद (प्रयाग) ले आया था। (4) बिहार राज्य में लौरिया अरराज गाँव, (5) बिहार में लौरिया नन्दनगढ़, (6) बिहार राज्य में चम्पारन जिले में रामपुरवा गाँव। पूरे सातों शिलालेख केवल दिल्ली के समीप तोपरा गाँव के पाषाण स्तम्भ पर अंकित हैं बाकी स्तम्भों पर इन सात शिलालेखों के कुछ भाग ही प्राप्त हुए हैं। **लघु स्तम्भ लेख**—छोटे पाषाण स्तम्भों पर अशोक ने अपनी घोषणाएँ, आदेश और धार्मिक कार्यों तथा तीर्थयात्राओं के विवरण अंकित करवाये हैं। ऐसे लघु शिलालेख पाँच स्तम्भों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। ये पाँच स्तम्भ निम्नलिखित स्थानों पर हैं—(1) मध्य प्रदेश में साँची, (2) उत्तर प्रदेश में सारनाथ, (3) उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के समीप कौशाम्बी, यहाँ का स्तम्भ आजकल प्रयाग में है, (4) बिहार के बस्ती जिले में रुम्मिनदेई ग्राम। यहाँ के स्तम्भ पर लिखा है—"यहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था।" इसी लेख द्वारा बुद्ध के जन्म-स्थान लुम्बिनी वन की स्थिति का निश्चय हुआ। (5) बिहार राज्य में बस्ती जिले में रुम्मिनदेई स्तम्भ के 21 किलोमीटर दूर निगलवा गाँव के समीप झील के तट पर। **गुहालेख**—अशोक ने बिहार राज्य में गया नगर के समीप तीन गुफाओं में लेख अंकित करवाये थे। इनमें अशोक की धार्मिक उदारता, सहिष्णुता और उस दान का वर्णन है जो उसने आजीविक मत के साधुओं को दिया था।

अशोक के शाहबाजगढ़ी और मनसेहरा के शिलालेखों की भाषा खरोष्ठी है जो दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती है। शेष शिलालेखों की भाषा प्राकृत है और ब्राह्मी लिपि है जो बायीं से दाहिनी ओर लिखी जाती है। ये शिलालेख बड़े कलापूर्ण ढंग से स्पष्ट अक्षरों और लिपि में उत्कीर्ण किये गये हैं और मौर्य काल के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मौर्य-कला की विशिष्टताएँ

मौर्ययुगीन कला की अपनी विशिष्टताएँ रही हैं। ठोस पाषाण स्तम्भों में उसके दण्ड की भव्य सादगी और उसके शीर्ष पर स्थित पशुओं की सुन्दर कलापूर्ण मूर्तियों —दोनों का श्रेष्ठ समन्वय है। ये समूचे स्तम्भ पाषाण के एक ही विशाल टुकड़े से काटे जाते थे और ये उनके खदानों से भारत के विभिन्न दूरस्थ प्रदेशों से ले जाये जाते थे। अतः ये शिल्पियों की अचूकता, सूक्ष्मता तथा यथार्थता की भावना और तकालीन इन्जीनियरिंग कला की श्रेष्ठता प्रकट करते हैं। स्तम्भों के शीर्षों में सौन्दर्य, अनुपात, प्रकृति की अनुरूपता और सूक्ष्मतापूर्वक अंकन (सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष का अंकन) इस बात के प्रमाण हैं कि मौर्य-युग में पाषाण में उत्कीर्ण करने की कला और

मूर्तिकला तथा भास्कर कला उत्कृष्टता की प्रकार पर्वतीय गुफाओं में उपासनागृहों, सभागृहों भी अपनी पवित्र शैली थी। पाषाण स्तम्भों और समान चमकीला और चिकना करने का जो कर अपनी अनूठी विशिष्टता है। **विन्सेण्ट स्मिथ** चिकना करने की कला इस पूर्णता तक पहुँच गयी वर्तमान युग की कलात्मक शक्तियों के लिए यह अतिरिक्त इस युग की कला में भाव प्रकाशन की गुण है। परन्तु मौर्य कला पर सम्राट की सत्ता उसके जीवन-चरित्र, आदर्शों और धार्मिक विचारों बातों का निरूपण हुआ है। भावनाओं, विचारों की व्यक्तिगत अभिरुचि ने कला को प्रोत्साहन नितान्त भ्रममूल और मिथ्या है कि मौर्य सम्राट व तत्वों को मुक्तरूप से अपनी कलाकृतियों में कला अपनी भावना और कृतियों में पूर्णरूपेण थी। पर यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि लोगों के विचारों व धारणाओं का स्पष्ट अंकन सम्राट के राज्याश्रय में मौर्य कला फली-फूली, यह दीर्घकालीन नहीं रही।

Scanned with CamScanner

मूर्तिकला तथा भास्कर कला उत्कृष्टता की पराकाष्ठा तक पहुँच गयी थी। इसी प्रकार पर्वतीय गुफाओं में उपासनागृहों, सभागृहों तथा प्रेक्षागृहों के निर्माण करने की भी अपनी पवित्र शैली थी। पाषाण स्तम्भों और गुहा-गृहों की दीवारों को शीशे के समान चमकीला और चिकना करने का जो कलाचातुर्य था, वह भी मौर्य कला की अपनी अनूठी विशिष्टता है। **विन्सेण्ट स्मिथ** का कथन है कि "कठोर पाषाण को चिकना करने की कला इस पूर्णता तक पहुँच गयी थी कि यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग की कलात्मक शक्तियों के लिए यह एक खोयी हुई कला ही है।" इसके अतिरिक्त इस युग की कला में भाव प्रकाशन की शक्ति भी थी जो कला का सर्वोच्च गुण है। परन्तु मौर्य कला पर सम्राट की सत्ता की छाप है। उसमें मौर्य सम्राट, उसके जीवन-चरित्र, आदर्शों और धार्मिक विचारों तथा सिद्धान्तों और प्रशासकीय बातों का निरूपण हुआ है। भावनाओं, विचारों और वस्तुओं के प्रति मौर्य सम्राटों की व्यक्तिगत अभिरुचि ने कला को प्रोत्साहन और प्रेरणा प्रदान की। यह कहना नितान्त भ्रममूल और मिथ्या है कि मौर्य सम्राटों ने ईरान और यूनान के कला लक्षणों व तत्वों को मुक्तरूप से अपनी कलाकृतियों में अपना लिया। सत्य तो यह है कि मौर्य कला अपनी भावना और कृतियों में पूर्णरूपेण भारतीय थी। उसकी आत्मा भारतीय थी। पर यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन लोकजीवन और साधारण लोगों के विचारों व धारणाओं का स्पष्ट अंकन मौर्य कलाकृतियों में नहीं हुआ है। सम्राट के राज्याश्रय में मौर्य कला फली-फूली, पर लोक-जीवन पर आश्रित न होने से यह दीर्घकालीन नहीं रही।

Scanned with CamScanner

...मूर्तियाँ, खिलौने, बैल, ...प्रतिमाएँ सारनाथ, कौशाम्बी, मथुरा, राजघाट, श्रावस्ती आदि स्थानों पर उपलब्ध हुई हैं। विष्णु, सूर्य, दुर्गा, गंगा और यमुना की मूर्तियाँ, हाथी सवार, विदूषकों और बौनों की आकृतियाँ बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हुई हैं। ये अनुपम सौन्दर्य की मूर्तियाँ और आकृतियाँ गृहों, मन्दिरों और स्तूपों में प्रदर्शित की जाती थीं एवं उत्सवों के समय इनकी माँग अत्यधिक रहती थी। मोटे रूप से ये मूर्तियाँ तीन प्रकार की होती थीं—(1) बौद्ध और पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, (2) पुरुषों और स्त्रियों की प्रतिमाएँ, (3) पशु-पक्षियों एवं अन्य वस्तुओं की आकृतियाँ और मूर्तियाँ। इनकी सुन्दरता और सजीवता धातु की बनी मूर्तियों से भी बढ़ी-चढ़ी होती थी। ये जनसाधारण की अभिरुचि और विनोद के अनुसार बनायी जाती थीं। मिट्टी की मूर्तियाँ, आकृतियाँ और फुटकर वस्तुएँ निर्धनों की कला बन गयी थीं तथा ये लोगों में अधिकाधिक लोकप्रिय हो गयी थीं। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि इन मिट्टी की मूर्तियों में गुप्त-युग की सच्ची कला की आत्मा निहित है। गुप्त-काल का शिल्पी वास्तविक सौन्दर्य की वस्तुओं का सृजन करता था, उसने जिस वस्तु का निर्माण किया, उसे अति सुन्दर और आकर्षक बनाया।

गुप्त-युग की मूर्तिकला की विशेषताएँ

गुप्त-काल में मूर्तिकला की तीन शैलियाँ प्रचलित थीं—(1) मथुरा, (2) सारनाथ, और (3) पाटलिपुत्र। इन तीनों स्थानों में विविध प्रकार की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। इसके अतिरिक्त दक्षिणी भारत में भी महाराष्ट्र राज्य में औरंगाबाद जिले में अजन्ता और इलौरा में भी मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी थीं। इन मूर्तियों की विशेषता अधोलिखित रही है :

(1) **गान्धार मूर्ति-कला शैली से विमुक्ति**—गुप्त-काल में मूर्तिकला पर विदेशी प्रभाव नहीं रहा, गान्धार शैली का जो भी अवशेष प्रभाव था वह भी विलीन हो गया था। गुप्त-काल की मूर्तिकला गान्धार-शैली के यवन प्रभाव से मुक्त होकर अपनी कल्पना, भाव-व्यंजना और शारीरिक गठन के अंकन में पूर्णरूपेण विशुद्ध भारतीय हो गयी थी। गुप्तयुगीन मूर्तियों में आकृति, मुद्रा, भावभंगी और परिधान व आभूषण पूर्णतया भारतीय थे।

(2) **भौंड़ेपन और सजावट के भार का अभाव**—गुप्त-काल में प्रचलित शैलियों की मूर्तियों में न तो प्रयास की झलक और न प्राथमिक प्रयत्न का भौंड़ापन ही दृष्टिगोचर होता है और न उनमें आवश्यक सजावट और अलंकरण का भार पाया जाता है।

(3) **सुन्दर आकर्षक मूर्तियाँ**—इस युग की मूर्ति-कला ने सुन्दर आकर्षक आकृतियों की मूर्तियाँ निर्मित कीं। उनमें रमणीय अलंकृत प्रभामण्डल, बारीक महीन पारदर्शक परिधान, केशों का विशिष्ट प्रकार का प्रसाधन, अंग-प्रत्यंगों का सौष्ठव और लावण्य, मुख और हाथों के हाव-भाव, विभिन्न मुद्राओं आदि का सुन्दर सामंजस्य है। इससे प्रतिमाओं में अपूर्व आकर्षण, महिमा और प्रभाव उत्पन्न हो गया।

(4) **भौतिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति**—इन मूर्तियों में भौतिक लावण्य और पार्थिव सौन्दर्य के साथ-साथ आन्तरिक शान्ति, ओज की अभिव्यक्ति के आनन्द की अनोखी झलक है। सुन्दर, गम्भीर, शान्त मुद्रा, करुणा के भाव एवं

तेजोमय आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है। आत्मा का आन्तरिक सौन्दर्य मूर्तियों के मुख निखर उठा है।

(5) **उत्कृष्ट आदर्शवाद और सौन्दर्य भावना का समन्वय**—इस युग की कला में उत्कृष्ट आदर्शवाद और सौन्दर्य की पूर्ण विकसित भावना का समन्वय है। मूर्तियों में आध्यात्मिक अभिव्यंजना के साथ-साथ सौन्दर्य का समुचित रखा गया है। मूर्तियों की अभिव्यंजनामयी आकृतियों से आध्यात्मिक अनुभूति समन्वय करके कलाकारों ने लावण्य संयोजन के लिए सूक्ष्मता और मधुरता को आकृतियों में सन्निविष्ट किया। इससे मूर्तियाँ रमणीय, सरस और आकर्षक गयी हैं।

(6) **समृद्ध समाज का प्रतिनिधित्व**—गुप्त-युग की मूर्तियाँ स्वर्णकाल के समाज की प्रतीक हैं। वे गुप्तकालीन संगीत, साहित्य, सौन्दर्य और संस्कृति ललित कलाओं के अनुरागी नागरिकों और कला-मर्मज्ञों की सौन्दर्य वृत्ति तथा सम्पन्नता का परिचय देती हैं। इस युग की मूर्तियों के शरीर पर इतने बारीक उत्कृष्ट कोटि के वस्त्र हैं कि उनमें से शरीर के अंग-प्रत्यंग झलकते हैं। स्त्री-पुरुष देवी-देवताओं की प्रतिमा की देहों पर पहले के युगों की अपेक्षा कम आभूषण परन्तु ये कम आभूषण भी विविध प्रकार की कलापूर्ण और मनमोहक डिजायनों तथा रत्नजड़ित हैं।

(7) **मूर्ति कला का प्रौढ़ व परिष्कृत रूप**—गुप्त-युग की मूर्तिकला अपने व परिष्कृत रूप में विकसित हुई थी। भारत की मौलिक कला-प्रतिभा देश की आध्यात्मिक भावनाओं और धारणाओं के अनुरूप ही मूर्ति निर्माण करने में पूर्ण विकसित हो चुकी थी। सौन्दर्य और सौष्ठव के साथ चिन्तन का मिलन गुप्त-युग देन है।

चित्रकला

गुप्त-युग में प्राचीन चित्रकला अपने वैभव, गौरव और ज्ञान की चरम

अजन्ता की चित्रकला की विशेषताएँ—अजन्ता के चित्रों के ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि अजन्ता के भित्ति-चित्रों की बाहुल्यता और बहु-विविधता वस्तुतः विलक्षण है। इन चित्रों में जैसा ऊपर उल्लेख है तीन प्रकार के विषय हैं :

(1) छतों कोनों, पार्श्ववर्तीय भागों, अन्तरालों आदि स्थानों को सुन्दर चित्रों से सजाने के लिए पुष्प, वृक्ष, पत्रावली, झरने, नदी, पशु-पक्षी, धार्मिक देवी-देवता आदि की आकृतियाँ एवं रिक्त स्थानों को चित्रों से अलंकृत करने के लिए किन्नर-किन्नरियों, अप्सराओं, गन्धर्वों तथा यक्षों की सुन्दर आकृतियाँ चित्रित की गयीं।

(2) बुद्ध और बोधिसत्व के मनोरम चित्र।

(3) बौद्ध धर्म के जातक ग्रन्थों में से अनेक वर्णात्मक दृश्य।

अजन्ता के चित्रों ने भाव-व्यंजना के अवर्णनीय चित्रकला चातुर्य प्रदर्शित किया। जैसा ऊपर उल्लेख है अजन्ता में चित्रकारों ने प्रकृति को भी स्नेह और सहानुभूति से चित्रित किया है। चित्रों की बारीकी और विविधता को देखकर ऐसा भास होता है कि कलाकारों ने अपने हृदय की गहनतम गहराई इनमें भर डाली है। विश्व की विविधता चित्रित की गयी। राजा से रंक, पापी से साधु, क्रूर से दयालु, बालक से वृद्ध, कुरूप से सुन्दर, हर प्रकार के व्यक्ति, महलों से वन और आश्रम, नगर से ग्राम तक के जीवन को चित्रित किया है। समसामयिक वस्त्रों, आभूषणों, अलंकारों, वाद्यों, पात्रों, अस्त्र-शस्त्रों का अधिकतम परिचय, समसामयिक मन्दिर, मण्डप, नगर, द्वार, महल, प्राचीर, झोंपड़े, स्तूप, विहार, आदि का विशिष्ट ज्ञान अजन्ता के चित्रों से होता है। अजन्ता के प्राण वे रेखाएँ हैं जिनसे आकृतियों की सृष्टि हुई है। प्रत्येक आकृति के प्रत्येक अंग की केवल रेखा की मोटाई के अन्तर से सौष्ठव प्राप्त हुआ है। मुखमण्डल का लावण्य, कन्धों की गोलाई, भुजाओं का लालित्य, उंगलियों की कमनीयता, कटि की लचक सभी कुछ कलाकारों की रेखा-अभिव्यक्ति-कौशल के कारण सम्भव हो सका। आकृति की सभी रेखाएँ अपने आप में एक कविता है। उनमें गति है, लय है, संगीत है। एक बार रसानुभूति हो जाने पर ये सभी रेखाएँ इसकी स्रोत प्रतीत होती हैं।

सुन्दर कल्पना, रंगों की प्रभा, प्रशंसनीय रेखाओं का लालित्य और उनकी कमनीयता, विषय-वस्तु की विविधता, अभिव्यक्ति की सम्पन्नता और अभिव्यंजना का कौशल तथा उसकी विलक्षणता के कारण अजन्ता के इन भित्ति चित्रों में अद्वितीय आकर्षण और सौन्दर्य है। टेकनिक की दृष्टि से अजन्ता के चित्र विश्व में सर्वोत्तम माने गये हैं। अजन्ता की कला, कृति में इतनी पूर्ण, परम्परा में इतनी निर्दोष, अभिप्राय में इतनी सजीव, विषय-वस्तु में इतनी विविध, शृंगाररत सुन्दरियों के चित्रण में उनके प्रसाधन और अलंकरणों में इतनी परिपूर्ण अभिव्यंजना, यथार्थ और आदर्श का इतना श्रेष्ठ समन्वय तथा आकृति और वर्ण के सौन्दर्य में इतनी प्रसन्न है कि उसे विश्व की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों में विवश हो मानना पड़ेगा। अजन्ता के भित्ति चित्र विशुद्ध भारतीय कला के उच्चतम विकास के द्योतक हैं। चित्रकला की विधि और परम्पराओं के परिचायक हैं। सम्पूर्ण चित्र से लेकर छोटे-छोटे से मोती या फूल तक सभी कुछ अन्तर्दृष्टि की गहराई तथा महान् तकनीकी कुशलता के प्रमाण हैं। यद्यपि अजन्ता के ये चित्र और उनके विविध दृश्य मानव जीवन की विभिन्न भावनाओं से ओत-प्रोत हैं, किन्तु फिर भी उनमें एक ऐसी आध्यात्मिक विशिष्टता है जिससे वे कभी भी विकारोत्पादक या अश्लील नहीं हो पाते।

Scanned with CamScanner

बाग—मध्य प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम मालवा में इन्दौर से लगभग सौ मील दूर मालवा-गुजरात की सीमा पर बाग गाँव के पास अजन्ता के समान ही गुफाएँ हैं जिनमें विहार, चैत्य, स्तूप और सभागृह हैं। इन गुहा विहारों और चैत्यों की दीवारों छतों और बरामदों में विभिन्न प्रकार के दृश्य चित्रित किये गये हैं। पुष्पों, लताओं भूमिति की आकृतियों, हाथियों, मृगों, वृषभों, गायों, वानरों आदि से भित्तियों, छतों और स्तम्भों को चित्रित किया गया है। कुछ स्थलों पर बुद्ध की प्रतिमाएँ चित्रित हैं। भव्य राजकीय जुलूस, नृत्य और गायन के दृश्य, शोकातुर रमणियों के दृश्य, हाथियों की दौड़ आदि के दृश्य अंकित हैं। बाग के चित्रों में अधिकांश धर्मनिरपेक्ष चित्र हैं। सौन्दर्य की कला की दृष्टि से ये चित्र सजीव हैं और अजन्ता के चित्रों की तुलना में कम महत्वशाली नहीं हैं। लंका में सीगीरिया में भी इसी काल के चित्र हैं। ये सम्भवतः स्कन्दगुप्त के शासनकाल के बाद में लगभग सन् 479 से 497 के बीच में चित्रित हुए हैं। इन चित्रों में से एक में बौद्ध मन्दिर की ओर जाती हुई सुन्दर स्त्रियों और पूजा सामग्री लिये हुए उनकी सेविकाओं के जुलूस को सुन्दर, आकर्षक ढंग से चित्रित किया गया है। कला-मर्मज्ञों का कथन है कि गुप्त-युग की चित्रकला में विशेष कर्षक, प्रभावोत्पादक दृश्य, रूप-रेखाओं की सुकुमारता, रंगों की प्रतिभा, रस और भावों की प्रचुरता है।

गुप्त-काल में चित्रकला इतनी उन्नतशील थी कि वृहत्तर भारत के विविध उप-निवेशों में भी गुप्तकालीन चित्रकला पहुँच गयी थी। गुप्त-काल में भारत से चित्रकार इन सुदूर देशों में गये और वहाँ उन्होंने अपनी चित्रकला की निपुणता और चमत्कार प्रदर्शित किये। फलस्वरूप भारत के इन उपनिवेशों में अनेक गुफा चित्र और रेशमी वस्त्रों पर विविध चित्र, गुप्त-काल की शैली में बने प्राप्त हुए हैं।